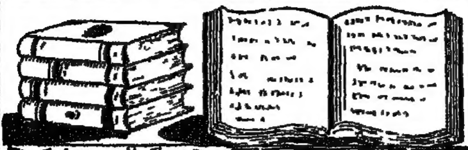


अमृतवाणी

[जीवन का पथ - प्रदर्शन करनेवाले ९० निजी पत्र]

महात्मा गांधी

साधना - सदन

६६, लूकरगंज,

इलाहाबाद

किंग्सवे, दिल्ली : चेतगंज, काशी

डेढ़ रुपया

प्रकाशक :
साधना-सदन
प्रयाग

अगस्त, १९५४

०

१००० प्रतियाँ

०

डेढ़ रुपया

मुद्रक :
इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स लि०,
प्रयाग

पहले इसे पढ़िए !

गांधीजी युग-पुरुष हैं। युग-पुरुष की भाँति उन्होंने हमारे जीवन को आच्छन्न कर लिया है। हम चाहें या न चाहें, उनके विरोधी हों या समर्थक, उनके प्रभाव से आज की हमारी विचार-धारा अथवा हमारी जीवन की कोई दिशा अछूती नहीं रह सकती। एक प्राकृतिक शक्ति की भाँति उन्होंने लक्ष-लक्ष व्यक्तियों को प्रभावित किया है। राजनीति, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और नीतिशास्त्र सबके प्रति उनकी अपनी देन इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उनका अध्ययन वर्तमान जगत् के विद्यार्थी के लिए अनिवार्य हो गया है।

गांधीजी पर प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। स्वयं उन्होंने जितना लिखा है, बहुत कम चिन्तकों ने उतना लिखा होगा। परन्तु इतना होते हुए भी, किसी विचारक की यह पुरानी उक्ति उनके विषय में भी लागू होती है कि—'संसार अपने महापुरुषों के विषय में कुछ नहीं जानता।' अभी-अभी, १९४२ ई० में, जो ग़लत आन्दोलन, गांधीजी के नाम पर, हो चुका है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। अहिंसा के प्रवक्ता के नाम पर हिंसा का समर्थन किया गया। जिस व्यक्ति ने बार-बार कहा है कि अहिंसा के लिए ही मैं जीवित हूँ और यदि कभी मैं अहिंसा के विरुद्ध कुछ कहूँ तो समझना, मेरा दिमाग़ ख़राब हो गया है, मैं पागल हो गया हूँ, उसी के कथित अनुयायियों ने उसकी बातें खींच—तानकर विनाश नीति का समर्थन किया। उनके अच्छे-अच्छे अनुयायी सन्देहग्रस्त

हो गये। मुझे याद है कि मेरे विरोध पर, उनके एक अनुयायी ने कहा था—गांधी-तत्वज्ञान समझने का ठेका तो बस आप पर ही है !

इन बातों से सिद्ध होता है कि आज भी उनके विषय में हमारा अज्ञान भयङ्कर है। हम उन्हें भी अपने नैतिक नाप से नापते हैं और एक सत्य-शोधक महापुरुष को छल-कपट और धूर्तता की राजनीति से अलग नहीं रख सकते। इसलिए आवश्यक है कि गांधीजी के तथा उनकी विचार-धारा के विषय में सत्य और वास्तविक ज्ञान का प्रसार लोगों में हो। इसकी अपेक्षा कि लोग उनके अनुयायी बनें यह अधिक आवश्यक है कि उनकी बातों और सिद्धान्तों को तोड़-मरोड़कर उन्हें ग़लत रूप में न रखा जाय। गांधीजी हिंसा की आग में जलती दुनिया के सामने एक शाश्वत सिद्धान्त—'केवल सत्य ही अन्त में टिकता है'—के प्रतीक हैं। वे हमारे जीवन में बढ़ती हुई नास्तिकता के विरुद्ध एक चुनौती—एक 'चैलेंज' के समान हैं। जब धन हमारा केन्द्र-बिन्दु हो रहा है, और जब तुच्छ स्वार्थ, लोभ और दैन्य ने हमें अपने प्रति अविश्वस्त और मूर्च्छित कर रखा है तब मानो वे हमें पुकार कर कहते हैं—तुम मनुष्य हो, तुममें ईश्वरांश है—तुम अपने ईश्वरत्व को भूल कर नहीं चल सकते; तुम्हें अपने पशुत्व से उठना ही पड़ेगा। प्राचीन ऋषिवाणी मानो पुनः हमें पुकार रही हो—शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः ....

० ०

गांधीजी राजनीतिक और सामाजिक जीवन में जितने महान् हैं, व्यक्तिगत जीवन में उससे कहीं दिव्य हैं। हज़ारों आदमियों को उनमें एक कर्तव्यनिरत और प्रेमल पिता के दर्शन हुए हैं। दैनिक जीवन में

नीति का पालन वे किस सूक्ष्मता से करते हैं; उनके निकट साधकों को कैसी शक्ति और श्रद्धा-पूत स्फूर्ति का अनुभव होता है, यह उनके निकट रहनेवाले लोग ही जानते हैं। वह जिनको ग्रहण करते हैं उनका कितना ध्यान, अपने कर्म-बहुल जीवन में भी, रखते हैं, इसे जानकर श्रद्धाभिभूत आश्चर्य होता है। इसीलिए उनके जीवन की दिव्यता का अनुभव उनके निकट रहकर ही किया जा सकता है।

परन्तु सबके लिए वह सम्भव नहीं है। उनके निजी जीवन के वर्णन, उनके निजी पत्रों से दूर-दूर रहने वाले लोग भी उसकी कुछ झलक पा सकते हैं। इसीलिए 'अमृतवाणी' का प्रकाशन किया जा रहा है। इसमें गांधीजी के लिखे नब्बे अत्यन्त निजी पत्रों का संग्रह है। ये पत्र गांधीजी ने एक आश्रमवासिनी सुशिक्षित महिला को गुजराती में लिखे थे। जब ये पत्र लिखे गये थे तब गांधी जी को कल्पना भी न थी कि कभी इनको प्रकाशित किया जायगा। इसलिए पत्रों में अत्यन्त स्वाभाविकता है। वे अत्यन्त संक्षेप में लिखे गये हैं, इसलिए उनमें केवल सूत्र-रूप में सिद्धान्तों की व्याख्या मिलती है। सुन्दर और हितकारी वचनों से ये पत्र भरे हुए हैं। इनमें अत्यन्त निजी और पवित्र चर्चाएँ हैं। इनमें गांधीजी ने अपने अनावृत जीवन को और भी अनावृत कर दिया है। अपनी दुर्बलताओं को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है; बार-बार भक्त और साधक की नम्रता के साथ, घोषणा की है कि मेरे पास कुछ नया नहीं है; जो है वह ऋषि-प्रदर्शित है, शाश्वत है और जो कुछ शक्ति मुझमें दिखाई देती है, मेरी नहीं, प्रभु की शक्ति है। गांधीजी—जैसे महापुरुष का सौन्दर्य यही है। अपने मर्मस्थल को उघाड़ कर सबको दिखाने, अपनी

छोटी से छोटी ग़लतियों को सबके सामने स्वीकार करने में वे कभी कुंठित नहीं हुए, और जिसे ठीक समझते हैं उसके लिए विश्व का विरोध भी उन्हें डिगा नहीं सकता। उनके जीवन में उनके लिए कुछ भी गुप्त नहीं है। पर दूसरे लोग तो उसी सीमा तक अपनी निजी दुर्बलताओं की स्वीकृति में सक्षम नहीं। जिस बहिन को ये पत्र लिखे गये थे, सौभाग्य-वश, वह भी एक सत्साहसी महिला हैं। उन्होंने देखा, दूसरों का भी इन पत्रों से बहुत कल्याण हो सकता है और बहुत से लोग इनके द्वारा गांधीजी के जीवन की झाँकी प्राप्त कर सकते हैं इसलिए उन्होंने, आचार्य कालेलकर से सम्पादित कराकर इन्हें मराठी में 'वात्सल्याची प्रसाद-दीक्षा' के नाम से प्रकाशित कराया। गांधीजी के राजनीतिक विरोधियों ने इन पत्रों की कई बातों को लेकर महाराष्ट्र में बहुत हो-हल्ला मचाया। महात्मा की पवित्र वाणी को प्राकृत मनुष्य की दुर्बलताओं के प्रकाश में, अर्थ का अनर्थ करके, समझा गया।

निजी पत्रों में की गई चर्चा, कितनी भी विस्तृत या संक्षिप्त क्यों न हो, वह किसी लघु निबन्ध का रूप धारण नहीं कर सकती। उसमें पूर्णता नहीं होती; संकेत होते हैं। उन्हें समझने के लिए हमें पत्र-लेखक और जिसे पत्र लिखा गया है दोनों के समान तल पर खड़ा होना पड़ेगा। उस तल पर बिना पहुँचे हुए हम पूर्णतः उस पवित्र वातावरण का आनन्द नहीं उठा सकते। कोई हमारे लिए अपने अन्तःकरण के द्वार खोल दे और हम उस अन्तःकरण की परख करने में असमर्थ होकर उसकी पवित्रता और कोमलता को गन्दगी और कठोरता समझने लगें तो

उसके प्रति अन्याय ही होगा। मुझे आशा है हिन्दी पाठक ऐसी अनु-दारता न दिखावेंगे।

मैंने कई वर्ष पूर्व इन पत्रों को पढ़ा था। तभी मैंने निश्चय कर लिया था कि इन्हें हिन्दी पाठकों के सामने रखूँगा। दिन बीतते गये और कार्यव्यस्तता के कारण मुझे अनुवाद का अवसर न मिला। १६४२—४३ की घटनाओं को देखकर गांधीजी-विषयक विवेकपूर्ण साहित्य के प्रकाशन की इच्छा और बलवती हुई। ठीक उपद्रवकाल में, मैंने 'गांधीवाणी' तैयार करके प्रकाशित की। समयाभाव-वश, 'साहित्यरत्न' श्री गङ्गाधर इन्दूरकर से मैंने इन पत्रों का मराठी से अनुवाद कराया। बाद में मूल से इन्हें मिलाकर सम्पादन और प्रामाणिक संशोधन के पश्चात् इसे प्रकाशित किया जा रहा है। पुस्तक की छपाई मई में शुरू हुई थी पर एक न एक विघ्न पड़ते रहे और अब कहीं यह प्रकाशित हो सकी है। अनुवाद के लिए मैं श्री इन्दूरकर का कृतज्ञ हूँ।

गांधीजी तथा उनके विचारों के सम्बन्ध में, यह, साधना-सदन का चौथा +प्रकाशन है। हमारी इच्छा और चेष्टा गांधीजी के विचारों के प्रामाणिक संस्करण तथा उनके सम्बन्ध में प्रामाणिक व्याख्या उपस्थित

+ इसके पूर्व 'सदन' से निम्नलिखित तीन पुस्तकें निकल चुकी हैं :—

१—गांधीवाद की रूपरेखा,

२—स्त्रियों की समस्याएँ,

३—गांधीवाणी।

करने की रही है और आज भी है । युद्ध-जर्जर विश्व के लिए उनका संदेश महान् और आशाप्रद है। इसलिए हम, अपनी तुच्छ शक्ति के अनुसार, थोड़ा-बहुत कार्य, प्रभु की कृपा से, इस दिशा में करते जा रहे हैं।

मुझे आशा है कि अन्य प्रकाशनों की भाँति, हमारे ग्राहक और पाठक, न केवल 'अमृतवाणी' के शुभ विचारों का स्वागत करेंगे पर उन्हें, यथाशक्ति, अपने जीवन में उतारने की चेष्टा करेंगे।

—श्रीरामनाथ 'सुमन'

विषयानुक्रमणिका

• •

संकेत-चिह्नों का स्पष्टीकरण

० ० ० व्यक्ति-विशेष, जिसका नाम नहीं दिया गया है।

……… पत्रांश जो छोड़ दिया गया है।

—:०:—

अमृतवाणी

[पत्र—१]

मूर्ति पूजा : तृष्णा : कर्तव्य-कर्म : सहजप्राप्त सेवा : समाधि

चिरं०—, तुझे आवश्यकता हो तो खड़ाऊँ ज़रूर रख ले। किन्तु ये लकड़ी के टुकड़े रखकर तू क्या करेगी? तेरा शरीर उससे दो इंच बढ़ता हो तो अवश्य रख ले। मैं तो इस वृत्ति को मूर्त्ति-पूजा समझकर नापसन्द करूँगा। अपने पिता की फोटो मैं अपने पास रखता था। दक्षिण-अफ्रिका में मैं यह फोटो, अपने दफ्तर में, बैठक में और अपने सोने के कमरे में रखा करता था। मेरे पास एक चेन थी। उसमें लॉकेट लगा हुआ था। उसमें पिता जी की और मेरे बड़े भाई की फोटो रहती। आज मैंने यह सब छोड़ दिया है। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं उन्हें अब कम पूज्य समझता हूँ। आज तो वे मेरे हृदय में अधिक अंकित हो गये हैं। उनके गुणों का स्मरण कर उनके अनुकरण का प्रयत्न करता हूँ। और ऐसी भक्ति मैं असंख्य देवताओं की कर सकता हूँ। पर यदि मैं उनकी मूर्तियाँ पास रखने लगा तो मेरे पास जगह बाकी न बचेगी। और उनकी खड़ाऊँ इत्यादि रखने लगा तो मुझे और नई ज़मीन की मिलकियत स्वीकार करनी पड़ेगी। अतः मेरे अनुभवों की सलाह तुझे यह है कि मेरे जितने उचित कदम पड़ रहे हैं उन पर कदम रख कर तू चल। मेरी खड़ाऊँ सँभालने से यह लाख दर्जे अच्छा है। और यह देखकर किसी ने उसकी नकल की तो कुछ बिगड़ता नहीं। किन्तु तेरे पास खड़ाऊँ देखकर कोई उसका अन्धानुकरण करने लगे तो वह गड्ढे में ही गिरेगा न? इतना समझकर फिर 'यथेच्छसि तथा कुरु।'

जो कर्तव्य-कर्म समझ लेता है और उसके अनुसार आचरण करता है, उसकी तृष्णा नष्ट सी हो जाती है। जिसकी तृष्णा मरी नहीं उसे अपने कर्तव्य-कर्म का ध्यान ही नहीं रहता। तृष्णा-शैल इतना ऊँचा है कि उसे कोई लाँघ नहीं सकता। उसे गिराये बिना काम नहीं चल सकता। तृष्णा के त्याग का अर्थ ही है कर्तव्य का ध्यान। मैं जानता हूँ कि मुझे काशी

जाना है। वहाँ जाने का रास्ता भी मालूम है। किन्तु मुझे कौन सी तृष्णा उस मार्ग से—कर्तव्य से परावृत कर सकेगी। मेरी तृष्णा 'काशी के मार्ग से जाना' यही है; और वह पूरी हुई। फिर बचा क्या? सहज-प्राप्त सेवा सामने है। यदि तू उसे एक-निष्ठ बन कर करेगी तो उसमें पूर्ण सन्तोष प्राप्त होना ही चाहिए। उस सिलसिले में जिसका साथ हो, जो पढ़ने को मिले वही ग्राह्य है। उसे छोड़कर दूसरे का विचार भी मन में नहीं आना चाहिए। यही मेरी दृष्टि में योगः कर्मसु कौशलम्, समत्व और समाधि है। किन्तु यदि यह बात तुझे ब्रह्मज्ञान-सी लगे और तेरा आत्मा को वाचन आदि की आवश्यकता हो तो तू उस इच्छा को प्रसन्नतापूर्वक तृप्त कर सकती है।

काम का बोझ कम करो। और थोड़ा विश्राम किया करो। यह किस प्रकार होगा यह तुम और ० ० ० मिल कर तय करो। ० ० ० दूरदर्शी हैं, धैर्यशाली हैं, और सच्चरित्र हैं। वे तुझे अवश्य सहायता करेंगे। मेरी तरह के लोग कुछ अंशों में मार्ग अवश्य सुझा सकते हैं। किन्तु तेरी और अपनी सब की, शान्ति का आधार अपने पर ही है।........पंडितजी का संगीत सुनने के पश्चात् तुझे दूसरा संगीत पसन्द न आयेगा। यह मैं जानता हूँ। किन्तु तू स्वयं भजन क्यों नहीं शुरू करती? तुझे संगीत आता है यह तो सच है।

२—१०—३० बापू के आशीर्वाद
यरवडा मन्दिर

[पत्र—२]

भ्रम-जाल

चिरं० —, तेरा पत्र मुझे मिला। लम्बा-चौड़ा उत्तर लिखा, इसमें कोई हर्ज नहीं। काम में लगे पिता ने एक ही पंक्ति लिखी तो भी बच्चों को सन्तोष मानना चाहिए। किन्तु उन्हें अपना हृदय पूरी तरह खोल देना चाहिए।

मेरे जाल में जो कोई आते हैं, मैं उन्हें फँसा रखना चाहता हूँ, यह बात एकदम सत्य है। किसी के जाल में फँसने के कारण अपना सर्वनाश होने की आशंका रहती है। मेरे जाल में फँसे किसी का भी सर्वनाश हुआ हो मुझे ज्ञात नहीं। अतः मैंने अपना व्यवसाय जारी रक्खा है।

ता० १६—१—२६ बापू के आशीर्वाद
आगरा

[पत्र—३]

पिण्ड और ब्रह्माण्ड

चिरं०—, तुझे लिखने में मुझे तकलीफ नहीं होती। तेरा अनुमान सत्य है। हिन्दुस्थान की समस्याएँ सुलझाने में मुझे जितनी मिठास मालूम होती है उससे भी अधिक आश्रम की समस्याएँ सुलझाने में, और उसमें भी विशेषतः बहिनों की समस्याएँ सुलझाने में, मालूम होती है। क्योंकि बड़ी समस्याएँ सुलझाने की कुंजी उसी में है। जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। ब्रह्माण्ड समझने में आदमी भूल कर सकता है। पिण्ड अपने हाथ में ही रहता है।

मालूम होता है कि शिशु-वर्ग की व्यवस्था अच्छी होने लगी है।... ......कच्चा करेला खाने की सिफ़ारिश मैंने जान-बूझ कर किसी मतलब से की है...........।

भावना सीधे रास्ते जा सकती है। उसे उस मार्ग से ले जाना ही परम-अर्थ है। पुरुषार्थ शब्द एकांगी है। तुझे कोई दूसरा तटस्थ शब्द सूझता है?

२८—१—३० बापू के आशीर्वाद
यरवडा मन्दिर

[पत्र— ४]

निद्रावस्था जागृतावस्था का दर्पण है !

चिरं०—, निर्दोष नींद आने के लिए जागृतावस्था में आचार-विचार निर्दोष होने चाहिएँ। निद्रावस्था जागृतावस्था की स्थिति आँचने का एक आइना है। भावनाएँ गलत मार्ग से जाने लगें तो उन्हें रोक रखने की शक्ति हम सब में होती ही है। वह उत्कृष्ट अर्थ है। ऐसे प्रयत्नों में पराजय को स्थान ही नहीं है।

आज डेढ़ मास हुआ, आकाश में बादल रहते हैं। किन्तु वर्षा का प्रमाण बहुत कम है। अहमदाबाद की सामान्य वर्षा से भी बहुत कम, ऐसा नहीं कहा जा सकता। बंदियों को मैं पत्र न लिखूँ, ऐसा संकेत मिला है। ० ० ० ० को पत्र लिखते समय मेरे आशीर्वाद लिखकर यह बात सुझाना।

ता० २८—८—३० बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र —५]

मूर्त्ति-पूजा का अर्थ

चिरं०—, मूर्त्तिपूजा के मैं दो अर्थ करता हूँ। एक मूर्त्तिपूजा के द्वारा मनुष्य मूर्त्ति का ध्यान करते करते उसके गुणों में लीन हो जाता है—यह पूजा अभीष्ट है। दूसरी में गुणों का विचार न कर मूर्त्ति को ही मूल वस्तु समझता है, यह बुतपरस्ती है, अनिष्टकारी है।

ता० १८—१०—३० बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—६]

उपवास का चमत्कार

चिरं०—, तेरा पत्र मिला। .. ..मैं अपने उपचारों से ही चिपटा रहता हूँ। डाक्टर का बताया हुआ उपचार चाहो बाद में करो। किन्तु कम से कम सात दिन का उपवास कर डालो। हमें अनशन से डर होना ही नहीं चाहिए। सात दिन के अनशन में बहुत से काम तू करती रह सकेगी। जीवन में पहिली बार ही जब मैंने बहुत दिनों का उपवास किया तो एक दिन का भी विश्राम न लिया। और हानि भी नहीं हुई। वह उपवास ७ दिन का था। उस समय शरीर में थोड़ी बहुत चर्बी भी थी। जिसके शरीर में चर्बी का संग्रह न होगा उसे ही उपवास में पड़ा रहना पड़ता है। दो दिन के पश्चात् तो तुझे अधिक शक्ति प्रतीत होने लगेगी। यह सच है कि पहिले दो दिन झूठी भूख लगी-सी मालूम होगी, किन्तु पीछे भूख ही नहीं लगती और अन्त में जब खून साफ हो जाता है तभी भूख लगती है। इस बीच एनीमा लेकर पेट साफ रखना चाहिए। एनिमा (पिचकारी) लेने के बाद अर्ध-सर्वांगासन करने से पानी ऊपर की अँतड़ियों को भी मिलता है। किन्तु तुझे उसकी जानकारी न हो तो छोड़ दे। उपवास-काल में पानी में नमक और सोडा डाल कर खूब पीना चाहिए। हर आठ औंस में पाँच ग्रेन नमक और दस ग्रेन सोडा, इस प्रकार आठ गिलास आसानी से लिये जा सकते हैं। धूप में बैठना चाहिए। किसी प्रकार का संकोच न करके तू इतना कर, ऐसी मेरी इच्छा है। चाहे तो डाक्टर को सूचित कर दे। वे भी यह उपचार पसन्द करेंगे। अब बहुत से डाक्टरों को उपवास का चमत्कार मान्य होने लगा है।

ता० १५—११—३०　　　　बापू के आशीर्वाद

[पत्र—७]

प्रार्थना : सिपाही का कर्तव्य

चि०—, जो निर्णय मैं करता हूँ उनके सब कारण मेरे ध्यान में हमेशा रहते हैं, यह बात नहीं। तू सच्ची सिपाही निकली—वहाँ रहने से सिपाहीपन नहीं होता, ऐसा तुझे प्रतीत होता हो तो वह गलत है। सभी सिपाही मोर्चे पर ही रहेंगे यह बात नहीं। बहुत से सिपाही सुरक्षित रक्खे जाते हैं। और केन्द्र स्थान पर भी जिम्मेदार आदमियों की आवश्यकता होती है। जोखिम का डर छोड़ देना आवश्यक है। संकट आने पर उसका अवश्य सामना करना है। किन्तु जो मनुष्य अकारण संकट की ओर दौड़ता है वह सिपाही नहीं मूर्ख है। सच्चा सिपाहीपन ईश्वर जैसे रक्खे वैसे रहने में है। उसमें अनासक्ति है। यही बात व्यावहारिक भाषा में कहना हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि जिस सेनापति के नीचे हम विचार कर अपनी इच्छा से गये वह जो कहे, हमें करना है—यह पाठ तूने पचा लिया है।

...गीता-पारायण के सम्बन्ध में तेरे विचार मालूम हुए। काका साहब से पेट भर लड़-झगड़ लो। किन्तु मुझे मालूम होता है कि तेरे विरोध की तह में प्रार्थना के सम्बन्ध में तेरी अरुचि अथवा अश्रद्धा नहीं है। तेरा चले तो तू केवल रामनाम की ध्वनि पर ही चला लेगी। मेरी सलाह है कि प्रार्थना की सब विधियों में श्रद्धा रक्खो। सधे तो अर्थ पर ध्यान दो। वैसा न करते बने तो वे शब्द संस्कारी हैं, उनके सुनने में भी हित है—ऐसी श्रद्धा रख कर नम्रता से सुनो। इसका अर्थ यह मत करना कि मैं किसी तरह सात दिन के गीता-पारायण पर ले आना चाहता हूँ। जिस प्रार्थना की तह में अनेक लोगों द्वारा अनन्य श्रद्धापूर्वक की गई १५ साल की तपस्या है, उस प्रार्थना में कुछ तो होना ही चाहिए। इतना ही तेरे मन पर जमाने के लिए लिखा है।

ता० २४—११—३० बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—८]

उपवास : शिशु-ताड़ना : नींद

चि०—, तेरा पत्र पढ़कर मुझे बहुत आनन्द हुआ। आज तेरा उपवास समाप्त हुए दो दिन बीते। यह पत्र जब तेरे हाथ आयेगा तबतक तो उपवास भूल गया होगा और तुझे नूतन तारुण्य का अनुभव होता होगा। ऐसा अनुभव न हुआ तो उपवास अधूरा रहा यही मैं कहूँगा। परिणाम मुझे विस्तार से लिखा ही होगा। तेरा अनुभव दूसरों के काम आना चाहिए। उपवास कैसे छोड़ना, यह तुझे मालूम ही है। उपवास के बाद भूख बहुत लगती है। किन्तु उस तरह पेट न भरना चाहिए। दूध दही धीरे-धीरे बढ़ाती जाना। सटर-पटर चीजें नहीं खानी चाहिएँ। रसीले फल खाने चाहिए। उसमें कंजूसी मत करना। शरीर स्वस्थ होना चाहिए। उपवास करते समय काम बराबर कर सकीं इसका मुझे आश्चर्य नहीं। कई एक को मैंने वैसा करते देखा है। मेरा अपना अनुभव मेरे पास है ही। जिनके शरीर में बहुत से रोग हैं उन्हें तो उपवास में अधिक शक्ति प्रतीत होती है। तेज तो अधिक आता ही है।

तेरे खिलाफ ० ० ० की शिकायत है। तू बच्चों को मारती है। डंडे का भी प्रयोग करती है। ऐसी बात हो तो यह आदत छोड़ दे। बच्चों को कभी न मारना चाहिए। कास्बी-लिखित 'टालस्टाय-शिक्षक' पुस्तक अपने संग्रह में है। उसे उलट-पुलट कर देखो। मारने से बच्चे सुधरते नहीं—यह अब सिद्ध हो चुका है। मैं जानता हूँ कि जिसे मार-मार कर सिखाने की आदत पड़ी है उसे यह कठिन लगेगा। किन्तु यह तो किसी बन्दूकधारी सिपाही के अनुभव की तरह हुआ। उसे यही मालूम होता है कि गोली के बिना संसार में कोई काम नहीं हो सकता। वह हो सकता है, यही सिद्ध करने के लिए तो हम लोग हैं। वैसे ही बच्चों का समझो.....................पूरी नींद लेनी चाहिए। मनुष्य को आहार की अपेक्षा नींद की अधिक आवश्यकता है। आहार के उपवास से लाभ होता है किन्तु नींद

का उपवास शरीर को क्षीण कर देता है, मस्तिष्क को पागल-सा बनाता है और अस्वस्थ कर देता है। अतः नींद के सम्बन्ध में लापरवाह मत रहो—रात के नौ से चार तक गाढ़ी नींद ले सको तो फिर मेरी कोई शिकायत नहीं।

ता० ३०-३१-३० बापू के आशीर्वाद

[पत्र—९]

बच्चों की ताड़ना

चि०—, तेरा पत्र मिला। बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में मालूम हुआ। तेरा तर्क पुराना है। वह दूषित वर्तुल है। तू मार खाने से सुधरी। अतः तुझे मारना चाहिए। बड़े होने पर बच्चे भी यही सीखेंगे। ठीक यही तर्क कर लोग हिंसा को स्वीकार करते हैं। इस झूठे अनुभव के आगे बढ़ना अपना काम है। उसके लिए धीरज चाहिए। यह मुझे स्वीकार है। यही धीरज अपने में लाने के लिए हम लोग इकट्ठा हुए हैं। बच्चों को पढ़ाना अथवा उन्हें अनुशासन में लाना यह ध्येय नहीं, उन्हें चरित्रवान बनाना यह ध्येय है। और इसी के लिए शिक्षण, अनुशासन इत्यादि सब कुछ है। चरित्र बनाते समय अनुशासन की ओर ध्यान न रहा, शिक्षण अलग रह गया तो रह जाने दे। तेरा कहना मैं समझता हूँ, तेरे ताड़न में द्वेष नहीं यह भी मुझे ज्ञात है। फिर भी उस ताड़न में रोष और अधीरता तो है ही। तुझे एक सूचना देता हूँ। बच्चों की सभा कर। जो यह कहें कि 'यदि हम उपद्रव करें और आज्ञा न पालें तो हमें मारो और इस प्रकार मारो', उन्हें मारो; जैसे कहें वैसे मारो। जो नहीं कहें उन्हें मत मारो। ऐसा करने से तुझे दिखाई देगा कि मारने की आवश्यकता ही नहीं है। इस विषय की चर्चा करती रह। अधीरता अथवा निराशा से छोड़ मत दे। मेरा कहा जबतक तेरे मन में जमता नहीं तबतक तू अपने रास्ते चल। मैं जानता हूँ कि तू सत्य की पूजा करने वाली है। अतः अन्त में तुझे सत्य मिलेगा ही।

ता० १४—१२—३० बापू के आशीर्वाद

[पत्र—१०]

ईश्वर की सत्ता : प्रार्थना

चि०—, तू ही वह लड़की है ऐसी कल्पना कर प्रार्थना के सम्बन्ध में तेरे प्रश्नों का उत्तर देता हूँ। जैसे हमें उत्पन्न करने वाले माँ-बाप होते हैं वैसे ही उन्हें उत्पन्न करने वाले उनके—इस प्रकार ऊपर बढ़ते-बढ़ते जिस निर्माता की हम कल्पना कर सकते हैं वही ईश्वर है। और इसीलिए उसका दूसरा नाम 'सर्जनहार' है। और जिस तरह अपने माँ-बाप को कई बार अपनी इच्छाएँ बिना बताये मालूम हो जाती हैं उसी तरह ईश्वर के बारे में भी समझना चाहिए। यदि माँ-बाप में इतना जानने की शक्ति होती है तो समस्त प्राणियों के बनाने वाले में अपना अन्तःकरण समझने की खूब शक्ति होनी चाहिए। अतः ईश्वर को हम अन्तर्यामी कहकर भी पुकारते हैं। उसे प्रत्यक्ष देख सकें, यह कुछ आवश्यक नहीं। अपने बहुत से रिश्तेदारों को हम लोगों ने देखा नहीं होता। किसी के माँ-बाप विदेश गये हों अथवा मर चुके हों तो भी वे हैं या थे, यह दूसरों पर श्रद्धा रखकर हम मानते हैं। उसी तरह ईश्वर के सम्बन्ध में अपने पास सन्तों की गवाही है। उस पर विश्वास रख कर हमें समझना चाहिए कि अन्तर्यामी है ही। और यदि वह है तो उसका भजन करना, उसकी प्रार्थना करना, यह बात तो आसानी से समझ में आ सकती है। हम यदि गुणवान हैं तो माँ-बाप को सवेरे उठते ही और रात को सोते समय साष्टांग प्रणाम करते हैं। उसी प्रकार ईश्वर को भी करना चाहिए। और जिस प्रकार हम अपनी इच्छाएँ माँ-बाप को बताते हैं उसी प्रकार ईश्वर से भी बतानी चाहिए। आज इतना ही बस है न?.........

इसमें से यदि कुछ मन में न बैठे तो वैसा लिखने में संकोच मत करना।*

ता० २२—१२—३०   बापू के आशीर्वाद

---

* 'बच्चों को प्रार्थना अच्छी मालूम हो ऐसा कोई पत्रात्मक प्रवचन भेजिए' इस प्रार्थना के उत्तर में यह पत्र लिखा गया है।

[पत्र—११]

बच्चों की शिक्षा

चि०—, मन जब खाली होता है तब मैं लड़कों के बारे में सोचता हूँ। दिसम्बर की २३ तारीख सबसे छोटी क्यों ? यह बच्चों को मालूम न होगा। यह समझाते समय भूगोल-खगोल का थोड़ा-सा ज्ञान आसानी से दिया जा सकता है। क्या तुझसे यह न करते बनेगा ? छोटे दिन के बारे में समझाते समय बड़े और बराबर दिनों के बारे में भी जानकारी दे। उसी के साथ ऋतुओं के परिवर्तन के सम्बन्ध में भी। क्रिसमस क्या है ? यह भी बता। इस प्रकार की प्रस्तुत प्रासंगिक चीजों में दोनों को ही मिठास का अनुभव होना चाहिए। इसी प्रकार पहाड़े और जबानी हिसाब की देशी पद्धति है। बच्चों को वह भी खेलते खेलते सिखाई जा सकती है। इस प्रकार विचार करते-करते सामान्य वनस्पतिशास्त्र भी ध्यान में आ जाता है। मैं उसमें ठंठ हूँ। तुझे कदाचित् उसका कुछ ज्ञान होगा। न हो तो उस सम्बन्ध का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर बच्चों को देना और मुझे भी—डाक द्वारा देना। सीखते जाना और सिखाते जाना। तेरे मस्तिष्क पर इसका बोझ न होना चाहिए। लड़कों का और मेरा काम बन जायगा। ऐसा यदि कुछ कर सकों तो करो। लड़कों को जो चाहिए वह हम लोग नहीं देते हैं, मुझे ऐसा हमेशा मालूम देता है। सहज प्रयत्नों से जो दे सकते हैं उसे तो दें।

ता० १—१—३१ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—१२]

ज्ञानी और भक्त : शिक्षा और संस्कारिता

चि०—, तेरा पत्र मिला। मेरे विचार से विवेकानन्द और ० ० ० का कथन एकांगी है। जो जैसा कहता है वैसा उसके हृदय में भी प्रतीत होना चाहिए। सूरदास, तुलसीदास आदि भक्तों ने खुद को शठ, कामी आदि

विशेषणों से सम्बोधित किया है। वह औपचारिक भाषा नहीं थी। वे हृदय के उद्‌गार थे। सच बात तो यह है कि अपने में दोनों भावनाएँ भरी हुई हैं। अमूर्च्छावस्था में हम स्वयं ब्रह्मरूप प्रतीत होते हैं। मूर्च्छितावस्था में उस दयालु के सामने हम दीन की तरह रहते हैं। जिसे हम दीन हैं ऐसा प्रतीत नहीं होता बल्कि पूर्ण ब्रह्म हैं, यह प्रतीत होता है वह करुणायाचक भजन न गायेगा पर ऐसा करोड़ों में एक भी न मिलेगा। अपनी लघुता का दर्शन करना, यह महान होने का मंत्र है। अलग गिरा हुआ समुद्र-बिन्दु अपने को समुद्र कहते कहते सूख जायगा। वह अपना बिन्दुत्व स्वीकार करेगा तो समुद्र की ओर जाने का प्रयत्न करते-करते उसमें विलीन होकर समुद्र बन जायगा।

कलचर माने संस्कारिकता, एज्यूकेशन माने साहित्य-ज्ञान। साहित्य-ज्ञान साधन है, संस्कारिकता साध्य। साहित्य-ज्ञान के बिना भी संस्कारिकता प्राप्त होती है। जैसे कोई बच्चा संस्कारी गृह में पला हुआ हो तो उसमें संस्कार अपने आप उत्पन्न होते हैं। आज की शिक्षा और संस्कारिकता इन दोनों में कम से कम इस देश में कोई भी मेल नहीं है। इस प्रकार की शिक्षा होने पर भी लोगों में अब भी थोड़ी-बहुत संस्कारिकता बची है, इससे प्रतीत होता है कि हम लोगों की संस्कारिकता की जड़ बहुत गहरी है।

ता० ५—१—३१ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—१२]

प्रियतम श्लोक : रोम्याँ रोलाँ

चि०—, तेरा पत्र मिला। अपने प्रियतम श्लोक के सम्बन्ध में एक बार मैंने कहा था—'मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय' आदि। आज मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। जिस समय जैसी मेरी मनोवृत्ति होती है उसी तरह के श्लोक प्रिय मालूम होते हैं। ऐसे प्रयत्न अब मुझे अच्छे नहीं लगते। मुझे पूरी गीता प्रिय प्रतीत होती है। माता का कौन-सा अंग प्रिय है, ऐसा यदि

किसी पुत्र से पूछा जाय तो उसमें जिस प्रकार कोई अर्थ नहीं हो सकता उसी प्रकार मेरे बारे में समझो।

यहाँ दो तीन दिन जाड़ा पड़ा। अब उतना नहीं मालूम होता। शायद चारों ओर से दीवारें होंगी इसीलिए। हम दोनों खुले में आसमान के नीचे ही सोते हैं।

* रोलाँ के लिए प्रार्थना की गई, अच्छा हुआ। मेरे साथ का उनका सम्बन्ध अलग रखने पर भी उनकी निर्मलता अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होती है।

ता० ११—१—३१ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—१४]

नायक (हीरो) : क्रान्ति-रहस्य

चि०—,मेरी हिम्मत कैसी है ? अथवा हिन्दुस्थान की भाषाओं पर मेरा प्रेम कैसा है ? कितनी भी गलत क्यों न हो किन्तु वह मराठी ही कही जायगी न ? किन्तु तुझे केवल मराठी में लिखने के लिए अभी देर है... .।

वनस्पतियों के सम्बन्ध में घरेलू ज्ञान तू ० ० ० से ले सकती है। अपने बच्चों को आश्रम में पैदा होने वाले छोटे-मोटे पेड़ आदि की पहिचान होनी चाहिए। वे कैसे पैदा होते हैं, उनकी आयु कितनी है, कब फलते हैं, इसका ज्ञान भी चाहिए न ? लेकिन खुद मुझे उसका ज्ञान नहीं।

संक्रान्ति के दिन यहाँ आधे दिन की छुट्टी न होती तो मुझे उसकी खबर भी न लगती। तेरे तिल गुड़ मिले। आजकल अपनी संक्रान्ति रोज ही है, यह कहा जा सकता है।

हीरो (Hero) माने पूजनीय व्यक्ति, देवता। राजनीति में इस स्थान पर मेरे लिए गोखले हैं। साधारणतः मेरे समस्त जीवन पर

---

* रोलाँ से अभिप्राय फ्रांस के प्रसिद्ध मनीषी और विचारक रोम्याँ रोलाँ से है। —सम्पादक

अपना प्रभाव डाल सके ऐसे टॉलस्टाय, रस्किन, थोरो और रायचन्द भाई हैं। कदाचित् थोरो को छोड़ देना ज्यादा अच्छा होगा।......

संसार में होने वाली क्रान्तियों के कारण महापुरुष दिखाई देते हैं। वास्तव में उनके कारण खुद लोग होते हैं। क्रान्ति एकाएक नहीं होती। जिस प्रकार ग्रह नियमित रीति से घूमते हैं वही बात क्रान्ति की भी है। किन्तु हमें वे नियम या कारण समझ में नहीं आते। अतः एकाएक फर्क हुआ सा प्रतीत होता है। बस।

ता० १७—१—३१ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—१५]

मानसिक आरोग्य

चि०—, तेरे दोनों पत्र मिले। कडुवी दवा यदि मैंने न पिलाई तो दूसरा कौन पिलायेगा? उसे पीने में ही स्वास्थ्य की रक्षा है। शरीर की अपेक्षा मानसिक आरोग्य की बहुत आवश्यकता है।

ता० ६—७—३१ बापू के आशीर्वाद

बोरसद

[पत्र—१६]

सत्याग्रह का तात्पर्य

चि०—, तेरा पत्र मिला। तुझे कौन सा वर्ष लगा है यह तू ने नहीं लिखा। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह मुझे मालूम होना चाहिए था किन्तु इन चीज़ों में मैं अज्ञान हूँ। 'दीर्घायु हो' यह कहने के बजाय मैं कहूँगा "शीघ्र निर्विकार निर्दोष होकर आदर्श सेविका बन।" तेरा प्रयत्न तो है ही; वह सफल हो।

अपने पत्र में तू ने दोनों रंग भरे हैं। उसमें हृदय खुला है यह मुझे पसन्द है। किन्तु उसमें रोष और अभिमान भी है। मैं उसका पृथक्करण

करने नहीं बैठा हूँ ....। यदि तू अपनी नोट-बुक न लिखती हो तो आज से लिखना शुरू कर दे। रोज किस पर गुस्सा उतारा (फिर वह बच्चा हो या बड़े लोग हों), किसे मारा किसे फटकारा—इतना मेरे लिए लिख तो भी बस है। बाकी तू जान और ० ० ० जानें। मैं तेरे काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। वह मेरे क्षेत्र के बाहर है। वह मेरी समझ में न आयेगा। मुझसे न्याय न करते बनेगा। मेरे पास वैसा साधन भी नहीं है। मैं अपना माँ-बाप बन बैठा हूँ। अतः मेरा कहना एकांगी होगा। और सत्याग्रही न्याय नहीं माँगता। यहाँ न्याय माने 'जैसे को तैसा'। सत्याग्रह माने 'शठं प्रत्यपि सत्यं'; हिंसा के विरुद्ध अहिंसा; क्रोध के विरुद्ध अक्रोध; अप्रेम के विरुद्ध प्रेम; इसमें न्याय तौलने के लिए कहाँ जगह है?

ता० २६—७—३२ बापू के आशीर्वाद
बारडोली

[पत्र—१७]

युरोपीय कला बनाम भारतीय कला : आश्रम का लक्ष्य : सहिष्णुता

चि०—,तेरा पत्र मिला। तुझे चाहिए वह सब दे सकूँगा या नहीं, नहीं कह सकता।*

......रोम की चित्रकला देखते समय आनन्द तो बहुत आया किन्तु दो घंटे देखकर क्या राय दूँ? मुझे उसमें का कुछ कुछ तो बहुत ही पसन्द आया। वहाँ मुझे दो-तीन महीने रहने को मिलें तो चित्र और मूर्तियाँ रोज़ गौर से देखूँ—और धीरे-धीरे उनका अभ्यास करूँ। वध-स्तम्भ पर की ईसा की मूर्ति मैंने देखी; अधिक से अधिक मेरा मन उसी ओर आकर्षित हुआ, यह मैंने पहिले लिखा ही है। किन्तु वहाँ की कला हिन्दुस्थान की अपेक्षा ऊँचे

---

* यूरोप-यात्रा के स्थलों का वर्णन देने की प्रार्थना की गई थी उसी को लक्ष्य कर यह लिखा गया है।

दर्जे की है ऐसा तो मुझे न मालूम हुआ। दोनो कलाएँ विभिन्न प्रणाली पर विकसित हुई हैं। भारतीय कला में कल्पना भरी है, यूरोपीय कला में प्रकृति का अनुकरण है। इसलिए कदाचित् पश्चिम की कला समझने की दृष्टि से सरल होगी। किन्तु समझने के पश्चात् वह हम को पृथ्वी पर ही चिपका कर रखने वाली होगी तो हिन्दुस्थान की जैसे जैसे समझ में आवे तैसे-तैसे हमको ऊपर-ऊपर ले जाने वाली होगी। यह सब तुझ सरीखी को बतलाने लायक ही समझा। इन विचारों का मेरे लिए कोई मूल्य नही। कदाचित् हिन्दुस्थान के सम्बन्ध में मेरे हृदय में छिपा हुआ पक्षपात यह लिखाता हो। अथवा मेरा अज्ञान मुझे कल्पना के घोड़े पर बिठाता हो। किन्तु जो ऐसे घोड़े पर चढ़ेगा वह अन्त में गिरेगा या नहीं? ऐसा है तो भी तुझे इनमें से कुछ मिलता हो तो ले ले; इन बातों के पार हो गई हो तो इसे फेंक दे। अपने से कम ज्ञान वाले बच्चो को माता-पिता जिस प्रकार रामायण महाभारत की कथाए, जैसी उन्हें आती हैं, बताते हैं और बच्चों को फुसलाते हैं, वैसे ही मेरे बारे में समझ। इसमें इतना तो तुझे दिखलाई देगा कि कला में मुझे रस तो मालूम होता है किन्तु ऐसे ही कितने ही रसों का मैंने त्याग किया है—मुझे करना पड़ा है। सत्य की खोज में जो रस मिले उन्हें मैंने छक कर पिया और, और मिले तो पीने के लिए तैयार हूँ। सत्य के पुजारी को प्रवृत्तियां सहज प्राप्त होती है। उससे वह स्वभावतः ही (गीता के) तीसरे अध्याय का अनुसरण करने वाला होता है। तीसरा अध्याय पढ़ने के पूर्व ही मैं कर्मयोग की साधना करने लगा था, यह मैं जानता हूँ। किन्तु यह तो विषयान्तर हुआ।

आश्रम के बारे में अच्छा पूछा। आश्रम में उद्योग प्रधान है। क्योंकि शारीरिक उद्योग करना मनुष्य का धर्म है। जो उद्यम नहीं करता वह चोरी का अन्न खाता है। और आश्रम का उद्योग जितना खुद के लिए है उतना ही परमार्थ-साधना के लिए भी है। चर्खे को केन्द्र बिन्दु बनाया गया है। क्योंकि हिन्दुस्थान के करोड़ों लोगो के लिए सामान्य सहायक धन्धा, खेती छोड़कर, यही कहा जा सकता है। इसमें धर्म और अर्थ दोनों ही बराबर

सँभाले जाते हैं। आश्रम का अस्तित्व केवल देश-सेवा के लिए ही नहीं; देश-सेवा के द्वारा विश्व-सेवा साधने के लिए है और विश्व-सेवा द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के लिए, ईश्वर का दर्शन करने के लिए, है।

जो आवेगा सब को आश्रम में भरती करते न बनेगा। आश्रम पंगुभवन नहीं, अनाथालय भी नहीं है। वह सेवक और सेविकाओं के लिए—साधकों के लिए—है। अतः जो शरीर से काम करने लायक न होंगे उनके लिए वह नहीं है। फिर भी जो सेवा-भाव से आर्द्र हो गये होंगे उनका शरीर पंगु होने पर भी हम उन्हें तो लेंगे। ऐसे केवल थोड़े ही लिये जा सकेंगे। किन्तु आश्रम में जो आश्रम-वासी बन कर भरती हो गये होंगे वे भरती हो जाने पर पंगु हो जायँ तो उन्हें हम निकाल न देंगे। बाह्य दृष्टि से देखकर आश्रम की बहुत सी कृतियों में विरोधाभास चाहे दिखाई दे, किन्तु अन्तर्दृष्टि से जाँचने पर वह आभास दूर हो जायगा। इतने से न समझी हो तो फिर पूछना। दूसरी शंकाएँ हों तो उन्हें भी खुले दिलसे मेरे सामने रखना।

विलायत में फोटो के लिए बहुत कम मैं खड़ा हुआ था। मैं समझता हूँ कि उसमें व्रत भंग नहीं हुआ।

मेरे साथ रहने वाले सबको मेरी तरह ही होना चाहिए, यह बात नहीं है। वह इष्ट भी नहीं। वह नकल करने की तरह होगा। मुझमें जितना अच्छा हो, और उसमें से भी जितना पच सके, उतना ही लेने में सार है। वैसे सरदार[1] चाय पीते हैं—उन्हें कौन रोक सकता है? और चाय उनके लिए औषधि की तरह काम में आती हो तो? मेरे साथ रहने वाले, मेरे कुछ साथी मांसाहारी भी हैं; उनका क्या? जिन्हें चाय अनुकूल नहीं पड़ती अथवा जिन्होंने चाय की उत्पत्ति वगैरह के बारे में विचार कर चाय न पीना निश्चित किया है, उन्हें न पीना चाहिए। बा[2]

---

[1] सरदार वल्लभभाई, जो उस समय महात्मा जी के साथ यरवड़ा में थे।

[2] स्व० कस्तूर बा, गांधी जी की पत्नी।

मेरे साथ हो कर भी चाय पीती है और काफ़ी भी पीती है। उसे मैं प्रेम से तैयार करके पीने के लिए भी दूँगा। वह क्यों? तेरे प्रश्न में केवल हँसी है, यह मैं जानता हूँ। फिर भी इस तरह की चीज़ों में हम लोगों की समझ थोड़ी भ्रमपूर्ण होती है। और हममें थोड़ी असहिष्णुता रहती है उसे निकालना आवश्यक है। तुझमें यह दोष है या नहीं, मैं नहीं जानता; किन्तु मेरे इस सम्बन्ध के विचार तू समझ ले यह अच्छा है.....।

२५—१—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—१८]

विद्यापीठ बनाम आश्रम : अपना-पराया-भेद

चि०—,तेरा पत्र मिला। पुस्तकों की सन्दूक जो मैं यहाँ लाया था वह क्या वहाँ पहुँच गई? विद्यापीठ में कोई रहता है? पुस्तकें भली-भाँति सँभाल कर रक्खी हैं या सब कुछ अव्यवस्थित चल रहा है? बहुत से मासिक पत्र भी सँभाल कर रखने लायक होते हैं। सच तो यह है कि पुस्तकें सँभालने के लिए एक आदमी पूरा समय देने लायक होना चाहिए। और उसके नीचे और दो हों। अन्यथा इतनी बड़ी लायब्रेरी हमें रखनी ही न चाहिए। यह काम विद्यापीठ का ही समझना चाहिए।

अपना वह काम नहीं। अपना काम नहीं था इसीलिए तो विद्यापीठ खोला, नहीं तो आश्रम को ही विद्यापीठ बनाया होता। आश्रम का वह क्षेत्र ही नहीं। आश्रम का काम मुख्यतः आन्तरिक है, विद्यापीठ का काम मुख्यतः बाह्य है—होना ही चाहिए। दोनों का उद्देश्य एक ही है। किन्तु प्रवृत्तियाँ स्वतंत्र हैं। इसलिए आश्रम में आवश्यक हो उतनी ही पुस्तकें रखनी चाहिएँ। जितनी आवश्यकता हो पढ़ने के लिए विद्यापीठ से लाई जाँय। किन्तु यह अब फिर से काम चले तब की बात है। आज तो सब बाढ़ में बह चला है, और वह ठीक ही है। बाढ़ समाप्त होने पर विस्तृत और काँच के समान साफ़ पानी ही तो रहता है?

नागपञ्चमी के उत्सव की मुझे याद है। मैंने उस समय जो उत्तर दिया था वह आज भी कायम है। सर फूटने के लिए मैंने पटाखे उड़ने की उपमा दी थी और जो आत्मा के गुण जानता है—वह तो अक्षरशः यह मान लेगा कि यदि आत्मा मरती ही नहीं तो फिर उसका घर अथवा कपड़े फटें, टूटें, सड़ें, जलें तो भी क्या बिगड़ जायगा और वह तो सदा पूर्ण है अतः उसे नये घर-बार की कमी नहीं। ज्ञान हो गया तो उसे उसकी आवश्यकता ही नही। किन्तु यह सब स्वयं अनुभव का विषय है। अतः जब तक अपने सर फूटते हैं तब तक पटाखे ही उसका कारण हैं—, यह समझना चाहिए। किन्तु आत्मा को कहाँ का अपना और पराया, यह प्रश्न मत करना। शरीर है तब तक थोड़े बहुत अंशों में अपना और पराया रहेगा यह समझ कर चले बिना दूसरा रास्ता नहीं है। ज्यों ज्यों स्वयं मरते जायँगे (*अहंकार नष्ट होता जायगा) त्यों त्यों अपना और पराया का भेद टूटता जायगा। जो पराया मालूम देता है उसे मारते जायेंगे वैसे-वैसे भेद बढ़ता जायगा। यह बात जैसे जैसे समझ में आयेगी तरुणों की तरह बच्चे भी रास्ते पर आयेंगे। उसके लिए धैर्य की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में बच्चों को लिखा हुआ पत्र देखो।

ता० ११—१—३१ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—१६]

जीवन के विरोधाभास : द्वेष बनाम प्रेम

चि०—, तेरा पत्र पहुँचा।

सरदार जी ने सचमुच चाय छोड़ दी है। सबेरे की तो छोड़ ही दी थी, यह मुझे मालूम था। किन्तु दस बजे पीते थे। अब वह भी छोड़ दी है। मुझे छोड़ने पर पता लगा। मैंने एक भी शब्द नहीं कहा, उन्होंने

* अनुवादक के शब्द।

अपनी इच्छा से ही छोड़ दिया। ·· ··········विरोधाभास का ऐसा है। मेरे अथवा आश्रम के जीवन में जहाँ विरोध का आभास मालूम होता है वहाँ मेल दिखाया जा सकता है। जाड़े में ओढ़ने वाले और गर्मी में खुला शरीर रखने वाले के जीवन में विरोधाभास स्पष्ट दिखाई देता है। विरोध के ऐसे कितने ही आभासों का मेल बैठाया जा सकता है। और विरोध तो विरोध ही है। उनका कारण आश्रम की अथवा मेरी दुर्बलता है। इन विरोधों की गणना दोषों में ही करनी चाहिए और इन्हें दूर करने यत्न होना चाहिए। कौन से विरोध विरोध के कारण दोष कहे जायेंगे और कौन से केवल आभास हैं, यह नोट करने लगें तब समझ में आयेगा। उन्हें जो विरोध मालूम हुए हों उनके बारे में पूछना चाहो तो पूछो।

द्वेष के लिए कोई कारण हुए बिना कोई द्वेष नहीं करता; अतः अपने को किसी ने द्वेष का कारण दिया तो भी उसका द्वेष न कर उस पर प्रेम करना चाहिए। उस पर रहम कर उसकी सेवा करना यही अहिंसा है। प्रेमी मनुष्य पर प्रेम करने में अहिंसा नहीं; वह तो व्यवहार है। अहिंसा को दान कहा जा सकता है। प्रेम के बदले प्रेम करना—यह कर्ज चुकाने की तरह है।

ता० ५—२—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र —२०]

विद्यापीठ : आश्रम : मेरी जीवन-दृष्टि : मानसिक संग्राम

चि०—, तेरा पत्र मिला। पत्र देर से मिले तब उस पर की मुहर देखकर मुझे तारीख लिख भेजना।

किशन को कितनी सज़ा हुई ? कहाँ रक्खी गई है ?

········· ········· ·········

········· आश्रम का शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं; यह अर्थ मुझे मेरे

किस वाक्य से निकाला ? मेरे मन में जो है वह यह है : अक्षर ज्ञान की बाहरी शिक्षा को आश्रम में गौण स्थान है। इसीलिए वह विद्यापीठ न बन सका। किन्तु बाहरी शिक्षा की उपयुक्तता आवश्यक है ही, इसीलिए विद्यापीठ का आविर्भाव हुआ। दोनों एक दूसरे की पूर्ति के लिए हैं। ऐसी क्षेत्र-मर्यादा होने के कारण आश्रम में पुस्तक-संग्रह की सीमा होनी चाहिए। विद्यापीठ के लिए सीमा होगी ही नहीं। उसकी सीमा आन्तरिक प्रयोगों के सम्बन्ध में बँधी हुई है। आश्रम का नाम फैल गया। उसके बारे में कितने ही अतिरेक-पूर्ण विचार फैल गये। अतः उसे भेंट-स्वरूप विभिन्न प्रकार की तथा विभिन्न प्रकार की भाषाओं की पुस्तकें आती हैं। उन सब को रखने का स्थान विद्यापीठ ही हो सकता है। आश्रम में तो जो अध्ययन हम करते हैं उसमें आवश्यक पुस्तकें ही होनी चाहिएँ। वे कौन सी हों इसे तू और दूसरे लोग आसानी से बता सकेंगे। निर्णय करते समय कठिनाइयाँ आवें तो मुझसे पूछ ले। मेरी समझ में कठिनाइयाँ उपस्थित होने का कारण ही नहीं है। इतने वर्षों के आश्रम के अस्तित्व के अनन्तर हमें सामान्यतः कौन सी पुस्तकों की आवश्यकता है—यह तुरन्त बताया जा सकता है। उन्हें छोड़ कर हमें आवश्यकता हो तो हम विद्यापीठ के ग्रन्थ-भण्डार का आश्रय ले सकेंगे। दोनों संस्थाएँ अलग-अलग हैं, ऐसा समझने का कोई कारण नहीं। दोनों के क्षेत्र स्वतंत्र हैं। किन्तु दोनों में साम्य बहुत है और वह बढ़ता जा रहा है।

किसी के सम्बन्ध में मेरा मन बँध गया हो तो मैं उसके खिलाफ कुछ न सुनूँ और कुछ न देखूँ ऐसा तो मैं जान-बूझ कर कभी नहीं करता। सुनता हमेशा हूँ ; किन्तु उससे हमेशा विचार बदले नहीं जाते। अवलोकन के पश्चात् बना हुआ विचार तुरन्त बदलना मैं दोष समझता हूँ। कभी विचार न बदलना हठ हुआ अतः वह भी दोष है। विचार बदलने के लिए कुछ तो सबल कारण होने चाहिएँ। कई बार तो मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता प्रतीत होती है। यह स्वभाव मैंने कायम रखा है। और उसके कारण मैं बहुत से झगड़ों—अनिष्ट—से बचा हूँ। मेरा औरों के साथ

का वास निर्मल रहा है। अतः जो कुछ पूछना हो खुले दिल से पूछ। ऐसा अवसर फिर न मिलेगा।

तेरा विश्लेषण ठीक है। 'यंग इण्डिया' का लेखक मैं यह एक व्यक्ति, आश्रम में सबके परिचय में आने वाला मैं यह दूसरा व्यक्ति। 'यंग इण्डिया' में मैं पाण्डव (सद्‌गुणी) बनकर बैठता हूँ ; आश्रम में मैं जैसा हूँ वैसा दिखाई देता हूँ; दिये बिना कैसे रह सकता हूँ ? और मैं ठहरा सत्य का पुजारी (उपासक)। तब जानबूझ कर दोष छिपाने का जरा भी यत्न मेरे हाथ से न होगा। अतः मुझमें वर्तमान कौरव (दोष) चारों ओर से बाहर निकल ही पड़ेंगे। मुझमें देवासुर संग्राम हमेशा चल ही रहा है, यह तूने ही कहा था न ? किन्तु कौरवों की हार हो रही है ; ऐसा मुझे मालूम हो रहा है। किन्तु उस सम्बन्ध में आज निश्चय से कुछ नहीं बतला सकता। सोलन* के कथनानुसार यह मृत्यु के पश्चात् ही बतलाया जा सकेगा। लक्षाधीश एक क्षण में भी भिक्षाधीश हुए मैंने देखे हैं। इस प्रकार मुझे किसी प्रकार का गर्व नहीं मालूम होता। गर्व करने से लाभ ही क्या ?

ता० ११—२—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—२१]

दूसरों की आलोचना : आश्रम और मैं : अक्षर-ज्ञान : आश्रम की प्रार्थना

चि०—, तेरा पत्र अच्छा है। खुले दिल से लिखा, यह ठीक ही हुआ। तूने जो आलोचना की है उसका यह उत्तर है। मुझे उस उस

---

* सोलन एक ग्रीक तत्ववेत्ता हो गया है। उसका कथन है—"किसी भी मनुष्य के विषय में उसकी मृत्यु के पूर्व कोई राय निश्चित मत करो।"

व्यक्ति का जवाब सुनना पड़ेगा तभी तो मैं उन उन उदाहरणों के सम्बन्ध में कुछ कह सकूँगा। किन्तु सामान्य रूप से मैं इतना कह सकता हूँ कि जहाँ छूट दी गई है वहाँ वहाँ 'प्रिविलेज' का विचार किया, या आवश्यकता देखी है। जो छूट लेते हैं वे आलस्य के कारण नहीं; उनका शरीर कहो अथवा स्वभाव कहो छूट चाहता है; ऐसा मुझ पर प्रभाव पड़ा है। हम किसी के न्यायाधीश नहीं हो सकते। उनके प्रयत्नों की हमें जानकारी भी न होगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि उनमें अपूर्णता नहीं है। अपूर्णता न हो तो आश्रम में किस लिए आते? वे ढोंगी नहीं हैं। मैं जो करता हूँ उसे सबको करना ही चाहिए अथवा सब उसे कर सकते हैं, यह समझना महादोष है। जो बोझा भीम उठाता है वह मैं उठाने लगा तो उसी क्षण मुझे 'राम' कहना पड़ेगा। और यदि कोई मेरे पंगुत्व से ईर्ष्या करेगा तो वह उसकी गलती होगी।

लोग मुझे ठगते हैं, ऐसा आरोप बहुतों ने लगाया है। कोई ठगते नहीं ऐसा तो नही है किन्तु बहुत से नहीं ठगते। मुझे ऐसा अनुभव मिला है कि बहुत से लोग मेरे सामने जो आचरण रख सकते हैं बाद में वैसा नहीं रख सकते। इस कारण कितने ही मेरा त्याग भी करते हैं। ऐसा बहुत बार होता है, इसलिए मुझपर आकर्षण शक्ति का आरोप लगाया जाता है।

किन्तु इतने से तेरा या औरों का समाधान होने की सम्भावना कम ही है। यह मैंने अपना बचाव करने के लिए नहीं लिखा, मैंने केवल अपनी मनोदशा बताई है। किन्तु सच्ची बात यह है, और वह मैं अनेक वर्षों से मान रहा हूँ, कि आश्रम की कमी मेरी कमी का प्रतिबिम्ब है। मैंने बहुतों को बताया है कि मेरी पहिचान मुझसे मिलकर न होगी। मुझसे मिलने पर मैं अच्छा भी दिखाई दूँगा, मुझमें जो गुण न होंगे वे भी मुझ पर लादे जायँगे। चूँकि मैं सत्य का पुजारी हूँ अतः वह पूजा दूसरों की आँखें क्षण भर के लिए चौंधिया देगी। किन्तु मुझे पहिचानने के लिए मेरी अनुपस्थिति में आश्रम देखना चाहिए। उसमें दिखाई देने वाले सब दोष मेरे दोषों के ही प्रतिबिम्ब हैं ऐसा समझने में जरा भी गलती न होगी;

मुझ पर अन्याय न होगा। जो समूह आश्रम में एकत्र हुआ है उसे मैं ही खींच कर लाया हूँ, ऐसा ही कहना चाहिए। और वे मनुष्य आश्रम में रहकर भी अपने दोष न दूर कर सके होंगे अथवा सब मिलकर दोष बढ़े होंगे तो उसमें उनका दोष नहीं, मेरा है। इसमें मेरी साधना की कमी है। ऐसी कमी मै देखता नही अथवा मेरी समझ में नही आती ऐसी बात भी नही है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि जो कमी है वह प्रयत्न करने पर भी बची हुई है। और मैं प्रयत्नशील हूँ इसलिए कुल मिलाकर आश्रम का पतन नहीं हुआ, ऐसी मुझे प्रतीति है। जिन तीन स्थानों पर आश्रम खोले गये उन स्थानों पर उनके तात्कालिक हेतु सफल हुए दिखाई दिये हैं इसका मुझे स्वयं आश्वासन है। किन्तु इस अश्वासन से भी मैं अपने को अथवा दूसरे किसी को ठग लूँगा, यह बात नहीं। मुझे जाना तो है बहुत दूर रास्ते में पर्वत-घाटियाँ अड़ी खड़ी हैं। फिर भी यात्रा तो पूरी करनी ही चाहिए। और सत्य की खोज में असफलता को स्थान ही नहीं, इस ज्ञान से मैं निश्चिंत हूँ।

आश्रम में विद्वत्समाज को आकृष्ट न कर सका, यह सच है। कारण मैं अपने को विद्वान नहीं समझता। और जो मुट्ठीभर विद्वान आश्रम की ओर खींच लाये गये हैं, वे विद्वत्ता बढ़ाने के लिए नही हैं बल्कि कुछ और लाने के लिए—बढ़ाने के लिए इकट्ठे हुए हैं। वे सब सत्य की खोज में हैं और सत्य की खोज तो चाहे अपढ़ भी करें, बच्चे करें, बूढ़े करें, स्त्रियाँ करें, पुरुष करें। अक्षर ज्ञान कई बार हिरण्यमय पात्र का काम करता है और सत्य का मुँह ढक देता है।

ऐसा कहकर मैं अक्षर-ज्ञान की कुछ निन्दा नहीं करता, उसे उसका योग्य स्थान देता हूँ।

आश्रम में प्रार्थना मुख्यतः संस्कृत में पसन्द की गई है; क्योंकि आश्रम में मुख्यतः हिन्दुओं का समूह आया है। दूसरी प्रार्थनाओं का द्वेष नहीं। कभी कभी हम उन्हें करते ही हैं न? बहुत से हिन्दुओं के बजाय यदि बहुत से मुसलमान आयें तो कुरानशरीफ रोज पढ़ा जायगा और मैं भी उसमें

भाग लूँगा। इसमें क्या तुझे कुछ उत्तर मिलता है? सन्तोष होता है? न होता हो तो फिर पूछो। मैं न थकूँगा। तुझे सन्तोष हो, यही इच्छा है। तू मत थक।

ता० १६—२—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—२२]

मीरा के विषय में : अपनी अन्धता : सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्।

चि०—, तेरा पत्र मिला। तू मुझसे हृदय को हिला देने वाले सूत्र रूप वचन चाहती है। मेरे पास यदि खजाना होता तो उसे खोलकर उसमें से प्रति सप्ताह मैं तुझे कुछ न कुछ भेजता गया होता। किन्तु मेरे पास वैसा कुछ भी नहीं है। जो वचन निकलते हैं, वे अपने आप निकलते हैं। और जो अपने आप निकलते हैं वे ही सच हैं—क्योंकि उन्हें ही जीवित वचन कहना चाहिए। दूसरे वचन कृत्रिम होते हैं। वे सुन्दर मालूम हों तो भी उनका परिणाम स्थिर नहीं रहता, ऐसा मैं समझता हूँ। मेरे द्वारा कृत्रिम-जैसा कुछ हो ही नहीं सकता। विलायत में अध्ययन करते समय दो बार ऐसा प्रयत्न किया और दोनों बार विफल हुआ। उसके पश्चात् वैसा प्रयत्न किया ही नहीं।

और जैसा मेरे वचनों के सम्बन्ध में है वैसा ही मेरे बारे में जो जो अनुभव तूने लिखे हैं, उस सम्बन्ध में भी समझ। मीरा बाई के बारे में हमने जो कहा था उसकी मुझे याद है। उस समय जैसा मुझे सूझा होगा मैंने उत्तर दिया होगा। उस उत्तर की छाप तुझ पर अच्छी नहीं पड़ी, यह मैं समझ सकता हूँ। यह मेरी अहिंसा की कमी है। उस समय मुझे जैसा सूझा वैसा मैंने बतलाया होगा। किन्तु उसमें तुझे दंश दिखाई देना भी संभव है। 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' यह केवल व्यवहार वचन नहीं सिद्धान्त है। प्रियम् का अर्थ अहिंसक है। मैंने तुझे जो आवेश में

कहा होगा वही यदि मैंने नम्रता से बताया होता तो जो कटु प्रभाव शेष रह गया वह न रह गया होता। अहिंसक सत्य के बारे में तो ऐसा होता है कि उस समय वह कड़ुवा मालूम होता है किन्तु वह परिणाम में उसे अमृतमय मालूम होना चाहिए। यह अहिंसा की अनिवार्य कसौटी है। मैं यह जो लिख रहा हूँ वह स्वतः हुए कटु अनुभव से लिख रहा हूँ। मीराबाई के सम्बन्ध में मैंने तुझे उसका पक्ष लेकर बहुत दृढ़ता से बताया होगा। किन्तु उसे मैंने जितना रुलाया है उतना किसी भी स्त्री पुरुष को रुलाया नहीं। और उसका कारण मेरी कठोरता, अधीरता और मोह है। मीराबाई-द्वारा किया हुआ त्याग मैं अवर्णनीय समझता हूँ। और इसलिए वह पूर्ण हो, यह मेरी इच्छा है। उसमें ज़रा भी कमी दिखाई दी और उस मोह के कारण अधीरता से उस पर कुछ क्रोध कर बोला कि बस (उसकी आँखों से) अश्रुधारा बह चली। इन अनुभवों से मैं अपने में भरी हुई हिंसा को पहचान सका। और उससे अपनी भूल का स्मरण कर मैं अपने को सुधारने का प्रयत्न करने लगा हूँ। इसी कारण मुझे तेरे पत्र अच्छे लगते हैं। तुझे उत्तर के रूप में मैं कुछ दे सकूँगा या नहीं, नहीं जानता। किन्तु मुझे तो लाभ हो रहा है। इस वस्तु की—मेरी कठोरता की—जानकारी मुझे विलायत में हुई। मेरी सेवा में मुख्यतः मीरा ही थी। वहाँ भी उसे रुलाने में मैंने कुछ बाकी न रक्खा। किन्तु उसमें मुझे शिक्षा प्राप्त हुई। किसी के भी बारे में मेरी मूढ़ावस्था ईश्वर ने अधिक देर तक रहने न दी। राजनीति में भी जब जब मैंने ग़लती की है तब तब ईश्वर ने मुझे तुरन्त सुधारा है। तेरे पत्र ऐसी जागृति में सहायता-रूप ही हैं।

अब तुझे मेरा पिछला पत्र ज्यादा अच्छी तरह समझ में आयेगा। अपूर्ण से पूर्ण की आशा—अपेक्षा कैसे की जा सकती है। एक अन्धे ने अन्धों का संघ बनाया है किन्तु अन्धा अपना अन्धापन जानता है। उसकी दवा भी उसे मालूम है। अतः अन्धों को साथ में रखकर भी उसे विश्वास है कि वह उन्हें कुएँ में न गिरायेगा; खुद भी न गिरेगा। वह अपने साथ लाठी लेकर चल रहा है। लाठी से आगे का रास्ता ढूँढ़ते हुए वह जा रहा

है और कदम रख रहा है। उससे सब मिलकर अब तक कल्याण ही हुआ है। लाठी का उपयोग करते समय भी जहाँ-जहाँ थोड़ा-सा रास्ता भूल गया है तहाँ तहाँ तुरन्त भूल मालूम हुई है और पीछे घूमकर साथियों को भी अपने पीछे घुमाया है। मेरा अन्धापन चल रहा है तब तक तेरे ऐसे प्रेमी आदमियों को टीका-टिप्पणी करने के कारण मिलते रहेंगे। अन्धापन जायगा तब टीका-टिप्पणी के कारण न मिलेंगे। इस बीच हम सब अन्धे सत्यार्थी होने के कारण हाथी को जैसा देखेंगे वैसा कहेंगे। हम सब के वर्णन भिन्न होने पर भी उतने उतने अंशों में वे एकदम सच होंगे। और आखिरकार हम सबों ने हाथी को ही स्पर्श किया होगा। जब हम लोगों की आँखें खुलेंगी तब हम सब मिलकर नाचेंगे और चिल्लायेंगे—"अरे, हम लोग कैसे अन्धे थे? यह तो हाथी है जिसके बारे में हम लोगों ने उस गीता में पढ़ा था। हम लोगों की आँखें जल्दी खुली होतीं तो कितना अच्छा हुआ होता किन्तु देर से खुलीं इसलिए क्या चिन्ता? ईश्वर के घर समय का माप ही नहीं अथवा दूसरा माप है। तब ज्ञान में अज्ञान लुप्त हो जायगा।

तुझे मुझमें जो जो कुछ टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई दिया होगा—उनके उत्तर अब तू इसमें से क्या न निकाल लेगी? इसका अर्थ यह नहीं है कि अब तू अपने प्रश्न मेरे सामने न रख। रखती जा और मैं उत्तर देता जाऊँगा।

ता० २७—२—३२ बापू के आशीर्वाद
यरवडा मन्दिर

[पत्र—२३]

भूल और अभिमान : आश्रम

चि०—, तू यज्ञ पूर्ण करना भूल गई। इसी से मैं समझता हूँ कि राम ने तेरा मद उतार दिया। यह गलती तू जितनी बड़ी मानती है मैं उतनी नहीं मानता। मद उतारा इतने के लिए ही कहता हूँ कि गलतियों के पुतले ऐसे जो हम लोग हैं वे किसी काम में एक भी गलती न करें तो हमें गर्व (फिर

वह कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो) उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। नारद के बारे में जैसा रामचन्द्र ने अथवा शिव ने किया वैसा राम ने तेरे बारे में किया, ऐसा दिखाई देता है। दोनों काम हुए। गर्व उतरा और अब गलती न होगी।

तेरे पत्र में जो शब्द-चित्र हैं उन पर आज कुछ लिखने लायक नहीं है। तू कठोर है, यह मैं नहीं कहता। तेरी टीका मेरे काम की ही है। सबमें गुण-दोष भरे हुए हैं। यदि तू गुण कम देखती है तो अधिक देखने की आदत डाल।

मेरे पत्र से सोच में पड़ने का ० ० ० के लिए कोई कारण नहीं था। ० ० ० यज्ञ कर ही रहा है। दूसरे शारीरिक कार्यों के लिए उसे मैंने समय ही नहीं रक्खा है, इसके लिए वह क्या करे ? इसमें मेरी रचना-शक्ति की अपूर्णता है। आश्रम शुरू किया तभी सुव्यवस्था कर सका होता तो आज जो कुछ लोगों का केवल देख-रेख करने इत्यादि में समय जाता है वैसा न जाता। चला सो चला। अब भी फेरफार हो सकता है, ऐसा मैं समझता हूँ। किन्तु वह कैसे किया जाय, यह नहीं सूझता और मेरी अपेक्षा इन चीज़ों में आश्रम-नियमों के अनुसार अधिक विचार कर अमल कराने वाला अथवा कराने वाली कोई अब तक हमें नहीं मिली है। नहीं मिलता तब तक जो है उसे सहन करना चाहिए। बहुत अपूर्णता है, यह ध्यान में रक्खा है। क्योंकि मेरा मत ही है कि आश्रम में सब लोग शारीरिक कार्य यथाभाग कर सकेंगे, और सुव्यवस्था हो सकेगी, यह सम्भव है। इस विश्वास के साथ हम चलें, कभी तो कुञ्जी हाथ लगेगी।

ता० ७–३–३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—२४]

साथियों के दोषों की ज़िम्मेदारी : संकर विवाह: वैवाहिक सम्बन्ध-विच्छेद : सहशिक्षण : सौन्दर्य

चि०—, तेरा पत्र मिला। अब मुझे बायें हाथ से ही लिखना पड़ेगा, अतः बायाँ हाथ दायें हाथ की गति से चलेगा नहीं। * महादेव की मदद अब मिलेगी तो किन्तु इसे जेल के बारे में नया प्रयोग ही कहना चाहिए। देखूँ कब तक लिखा ले सकता हूँ। केवल प्रेम के पत्र लिख लेना जम सकता है या नहीं, देखना है। काम के होंगे उतने लिखा लूँगा।

तेरे पत्र से मैं जरा भी नहीं ऊबा था। हम सबको या तो रोज़ बढ़ना चाहिए या कम होना चाहिए। स्थिर जैसा कुछ भी नहीं है।

दोषों की ज़िम्मेदारी मैं अपने ऊपर ही लेता हूँ। इसमें व्यर्थ की नम्रता अथवा अतिशयोक्ति जरा भी नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि दूसरे दोष से मुक्त हो जाते हैं किन्तु जो मुख्य है वह जैसे अच्छे का यश लेता है वैसे ही बुरे का—अपयश का—स्वामी भी उसे बनना चाहिए।

संकर विवाह की आवश्यकता एक मर्यादा तक मैं मानता हूँ।

जब पुरुष को सम्बन्ध-विच्छेद करने का अधिकार है तो स्त्री को वह होना चाहिए। किन्तु सामान्यतः मैं इस प्रथा के विरुद्ध हूँ। प्रेम की गाँठ अविभाज्य होनी चाहिए।

स्त्री-पुरुषों की शिक्षा अलग भी हो और एकत्र भी हो; यह विषयों पर निर्भर है। कानून की शिक्षा एकत्र लेनी चाहिए। इस सम्बन्ध में सभी देशों के लिए सभी परिस्थितियों में लगने वाला एक नियम मुझसे बनाते न बनेगा। यह विषय सरल नहीं है। कहीं भी निश्चयात्मक परिणाम कोई दिखा न सका है। यह सारा प्रश्न प्रयोग के क्षेत्र में है।

---

* स्व० महादेवभाई से अभिप्राय है।

सौन्दर्य की स्तुति होनी ही चाहिए। किन्तु वह मूक अच्छी; और आकाश के सौन्दर्य-दर्शन से जो हर्षित न होगा उसे कुछ भी पसन्द न आयेगा, ऐसा कहा जा सकता है। किन्तु जो हर्ष से पागल होकर नक्षत्र मण्डल तक पहुँचने के लिए सीढ़ी बनाने लगे वह मूर्च्छित है।

चीन जापान के बारे में अपनी सहानुभूति चीन की ओर ही होगी। किन्तु वस्तुस्थिति मैंने किसी लड़के के पत्र में दिखाई है, वही मालूम होती है।

ता० १३—३—३२ बापू के आशीर्वाद
यरवडा मन्दिर

[पत्र—२५]

यज्ञ और अभिमान : मृत्यु-भय मूर्खता है : मनुष्य और समत्व : विजेता बनाम पराजित का पाप

चि०—, बायें हाथ से लिखने का निश्चय किया कि लिखने की प्रवृत्ति अपने आप ही कम होती है। अभी वह आदत नहीं पड़ी इसलिए। विलायत से जो कागज इत्यादि लाये हैं उन्हें हमें उपयोग में लाना है। उनसे बुद्धि-भेद होने की सम्भावना हो तो वैसे ही रखने चाहिएँ। पीछे से उपयोग में लाये जा सकेंगे।...

........यज्ञों के बारे में अभिमान (आग्रह) आवश्यक है। अभिमान (गर्व) माने मैं कैसी भी हूँ, मेरा यज्ञ चूक नहीं सकता, यह अभिमान त्याज्य है।

मुझे माया बाँधेगी ही नहीं, ऐसा अधिकार से यदि मैं कहूँ तो मुझे मेघ* जी के बारे में उत्तर देना पड़ेगा न। उसके (माया के) पाश से छूटने का प्रयत्न करते समय भी कोमलता और सेवा भाव हमें न छोड़ना चाहिए।

---

*चेचक की भेंट हुआ आश्रम का एक छोटा बालक।

कोई मरेगा तो क्या होगा यह विचार मूर्खता का है, माया का नहीं। मरना सभी को है, यह एक बार जानने पर उसका विचार क्यों करना ? और दूसरी बात यह है कि अपनी इच्छा से नटवर के हाथ की गुड़िया बन जाने पर फिर चर्चा किस लिए ? उसे जैसे नचाना होगा वैसे वह नचायेगा। मुख्य बात तो नाचने की है न ? जिसे हमेशा नाचने को मिलेगा उसे और दूसरा क्या चाहिए ?......

......तेरे दोषों की मैं चर्चा करूँ ऐसी माँग द्वारा तू स्तुति चाहती है क्या ? मुझे तेरे दोष दिखाने नहीं हैं। क्या एक से अधिक बार मैं तुझे दिखा नहीं चुका हूँ। उनमें कितने सुधार लिये, यह बता फिर और विचार करूँगा।

ईश्वर के भक्तों में एक सीमा तक ही समता होती है। पूर्ण समता जिसमें प्रकट होती हैं वह परमेश्वर है किन्तु वह तो एक ही है। तब पूर्णतम मनुष्य में भी समता अपूर्ण ही होगी। अतः मतभेद और विरोध होगा, उसमें दुःख मानने का कारण नहीं। जगत विषमता का परिणाम है। अपना धर्म रोज़ समता का अंश प्राप्त करने का होना चाहिए। ऐसा करने से विषमता असह्य मालूम होने के बजाय सह्य और कुछ अंशों में सुन्दर भी प्रतीत होगी।

और देशों से हिन्दुस्थान का सब कुछ अच्छा है, ऐसा मानने के लिए कोई कारण नहीं। और उतार चढ़ाव, यह विश्व का नियम ही है। कुल मिलाकर हिन्दुस्थान में बहुत कुछ है, इसलिए हिन्दुस्थान जित राष्ट्र हुआ— जीतने वाला नहीं। इसका गर्भितार्थ यह है कि गुलामों की अपेक्षा अत्याचार करने वालों की स्थिति अधिक खराब होती है।

अपने पास खगोल विद्या पर और अप्टन सिंक्लेयर की कौन सी पुस्तकें हैं ?

ता० २१—३—३२ बापू के आशीर्वाद
यरवडा मन्दिर

[पत्र--२६]

स्वप्न : प्रौढ़ स्त्रियाँ और सेवा कार्य : मनुष्यता

चि०—, तेरे मन में आवें वे प्रश्न पूछने का ऐसा अवसर फिर कदाचित् न आयेगा। तुझे मालूम नहीं कि मैं एक पंक्ति में भी उत्तर दे सकता हूं और पृष्ठ के पृष्ठ अंकित कर सकता हूँ। अधिक लिखने लायक न हुआ तो थोड़े में समाप्त करूंगा। तो भी उत्तर अपूर्ण न होगा। मेरे दाहिने हाथ पर तेरी जीभ का प्रभाव पड़ा, यह कहना कौवा डाल पर बैठा और डाल टूट गई अत कौवे के भार से डाल टूटी ऐसा समझने की तरह है।

मुझे स्वप्न तो आते है किन्तु मन का उधर कदाचित् ही ध्यान जाता है। स्वप्न आते हैं किन्तु उन पर मैं कुछ जोर नहीं दिया करता।

अपने पुस्तकालय में कार्लाइल और रस्किन के पुस्तकों का पूरा सेट होगा। हो तो उसकी सूची भेजो।

सब पुस्तकों की सूचियाँ अपने पास कितनी होंगी। एक से अधिक हों तो मुझे एक भेज दे।

प्रौढ़ स्त्रियों के बारे में मैने तुझे कभी लिखा नहीं; आज लिखना चाहता हूँ। आश्रम की बहिनें, किसी सामाजिक हेतु से एकत्र हुई दिखाई नहीं देती। इसका अर्थ—संघ टूटा है। इस बारे में ० ० ० को और ० ० को लिख ही दिया है; किन्तु उसका उन पर कोई प्रभाव हुआ दिखाई नहीं देता। मिलकर काम करने की जिम्मेदारी अपने पर लेने की शक्ति स्त्रियों में आनी चाहिए। तुझे साहस और आत्म-विश्वास होता हो तो तू यह काम अपने हाथ में ले। यदि हाथ में लेना हो तो 'न हारूँगी' ऐसा निश्चय करके लें। अपने पास सब अनुकूल होने पर ही काम करना, यह कुछ किया नहीं कहलाता। चाहे जिस लकड़ी के टुकड़े से बढ़ई आकृति बनाता है, चाहे जिस पत्थर से मूर्तिकार मूर्तियाँ बनाता है; वैसे ही चाहे जैसे मनुष्यों के साथ रहने और उनसे काम कराने आया तो ही मनुष्यता कहनी चाहिए।

मैं तो समझता हूँ कि हमें यही संसार में सीखना है और इसके लिए हममें समुद्र-सी उदारता होनी चाहिए। किसी से मिलने पर उसके दोष ही देखने लगे तो काम ही बिगड़ जायगा। दोष तो अपने में और अपने सामने के आदमियों में हैं ही। फिर भी उनसे हमें मिलना है, यह निश्चय हो तो ही काम पूरा होगा। यह बहुत कठिन काम है, यह मुझे मालूम है। कई वर्षों से मेरा तो यह व्यवसाय ही है। किन्तु मैं पार हो गया, ऐसा नहीं कह सकता। थोड़ी सी सफलता मिली-सी मालूम होती है इसलिए तो दूसरों को आगे ले जाने की हिम्मत अथवा धृष्टता (साहस) करता हूँ।

अब तुझे उचित लगे सो कर। यह पत्र बहिनों के सामने रखना चाहे तो रख सकती है।

ता० २८—१—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

(पत्र—२७)

आश्रम : प्रेम का स्वभाव

चि०—, तेरा पत्र मिला। तलवार, जंबिया आदि के प्रयोग हम आश्रम में क्यों करें? इस बात की ० ० ० के पत्र में चर्चा की है; अतः यहाँ उसके बारे में नहीं लिखता। तू खुद वह सीख रही है इसलिए तेरे सामने ऐसा प्रश्न उपस्थित हुआ या नहीं यह पूछने के लिए ही यह यहाँ लिखा है।

तू आश्रम को जो प्रमाणपत्र दे रही है, वह मैं न दूँगा। सच होगा तो मुझे यह प्रमाणपत्र अवश्य पसन्द आयगा। आश्रम जिस प्रश्न को हाथ में लेता है, उसके पीछे पागल हो जाता है, यह प्रभाव कदाचित् तुझ पर पड़ा होगा। वह ठीक नहीं है। आश्रम के व्रत ही पूरी तरह हम कहाँ अमल में लाते हैं। आश्रम में हिन्दी, उर्दू, तमिष, तेलगू, संस्कृत सिखाना था। उस के विषय में बहुत ही शिथिल प्रयत्न हुआ है। चर्मकला हम लोग कहाँ सीख चुके हैं? अच्छा-पतला सूत हम लोग कहाँ निकाल सकते हैं? ऐसी

बहुत सी बातें मै दिखा सकूँगा। मेरी शंका के समर्थन के लिए इतना बस है। लाठी आदि के पीछे सभी लग सकते हैं। यह बात मिठाई के पीछे सब लगते हैं, यह कहने की तरह ही हुई। संसार में ऐसी चीज़ें हैं जिनके पीछे लगने में परिश्रम नही लगता। पशु-परिवार के होने के कारण हममें यह गुण स्वभावतः होता है। वह कुछ उत्पन्न नहीं करना पड़ता। उत्पन्न करना उचित है या नहीं, यही प्रश्न है। पशु जाति के सभी गुण त्याज्य हैं, ऐसा तो नहीं है।

आज कल रसोड़े (भोजन-गृह) में कितने लोग खाते है? पाव रोटी अब भी बनती है? बनती है तो कौन बनाता है। अच्छी बनती हो तो कोई इधर आये उसके साथ एक-दो इधर देखने के लिए भेजना।

दीक्षित जी के 'ज्योतिःशास्त्र' का गुजराती अनुवाद हुआ है, वह मेरे पास है। 'बाल' का यही मिल जायगा। वह नहीं मँगाता। अप्टन सिंक्लेयर की भेजी हुई पुस्तकें आश्रम की ही हैं, उन्हें जमा कर ले और उनमें से 'बोस्टन' और ग्रासटक्स भेज दे। शेष पुस्तकों की सूची भेजना।

उपनिषद मुझे पसन्द आते हैं। उनका अर्थ लिखने लायक मेरी योग्यता है, ऐसा मुझे नहीं मालूम होता।

मेरी परिहास की प्रकृति तुझे पहचाननी चाहिए। 'स्तुति' कहलाने के लिए दोष पूछती है, इसमें इतना सत्य है ही कि जो मनुष्य प्रेमी जन से दोष पूछता है उसका फल स्तुति सुनने में ही होगा। क्योंकि प्रेम दोषों पर परदा डालता है अथवा दोषों को गुण रूप से देखता है। किसी प्रसंग में दोष दिखायें, यह प्रेम की प्रकृति है,और वह भी पूर्णता देखने के लिए ही। ० ० ० के पास मैंने तुझे हिस्टीरिकल कहा था। उसमें भी तेरी स्तुति थी यह ० ० ० ने तुझे बताया क्या? क्योंकि यदि मैं तुझे हिस्टीरिकल न समझता तो तू अधिक दोषी ठहरती, ऐसा प्रसंग वह था। तू हिस्टीरिकल है ही। तू पागल की तरह हो जाती है, इसका क्या अर्थ है? जिस मनुष्य को भावनाओं का उफ़ान आता है वह हिस्टीरिकल है, यह समझती है न?

जापान को रूस के विरोध में विजय अवश्य मिलनी चाहिए थी, किन्तु

उसमें जापान की नीति अनुकरणीय है, ऐसा नहीं। किन्तु आज हम अपनी ही नीति सँभाल लें, तो पर्याप्त होगा। जापान की नीति सँभालने वाला, करोड़ों आँखों वाला, सतत-जागृत सत्पुरुष बैठा ही है।

ता० ३—४—३२　　　　　　　　　　बापू के आशीर्वाद

[पत्र—२८]

स्त्रियाँ और संघ सेवा कार्य : धर्म-परिवर्तन : हिन्दू धर्म के मूलतत्व

चि०—, तू एक पत्थर से बहुत सी चिड़िया मारने का लोभ रखती है? एक झटके से बहुत से बेर गिराने का लालच क्यों नहीं रखती? चिड़िया मारने का लोभ कम से कम त्याज्य होना चाहिए। *

बहिनों के बारे में संकट पड़ने का कारण नहीं है। तेरी ओर से बहिनों की सेवा लेने की इच्छा हो और तुझे आत्म-विश्वास अनुभव होता हो तो तुझे वह देनी चाहिए। अन्यथा यह बात सामने आई तो मानों आई ही नहीं, ऐसा समझ कर भूल जाना चाहिए। आत्म - विश्वास शिक्षा देने के बारे में नहीं, तेरी नम्रता के बारे में; ख्याल गलत न होने देने के बारे में; कठिन प्रसंग आते ही उनका सामना करने के लिए; कई बार हम अपमान, गलत ख्याल आदि के डर से जिम्मेदारी लेने में हिचकिचाते हैं। इस संकोच को तू पार कर सकती है तो जिम्मेदारी ले। बहिनें सब भली हैं, ऐसा तू मानती है। उनके विचार लिख सके, आफिस सँभाले, ऐसे मददगार की उन्हें आवश्यकता है। अपढ़ स्त्रियों में पढ़ी-लिखी लड़कियों से समझ, व्यवहार-बुद्धि अधिक हो सकती है। किन्तु उन्हें इस बुद्धि का उपयोग अपनी निरक्षरता के कारण करते न बनता होगा। यह कमी लड़कियों के द्वारा पूरी करने लायक है। यह कमी तू पूरी कर, यह मेरी इच्छा है......। किसी न किसी बहाने से ० ० ० बाई सब बहिनों को एकत्र करती थी। उन्हें ऐसा

---

* अँग्रेजी कहावत का शब्दशः अनुवाद न कर अपने जीवन के अनुकूल उसका रूपान्तर करने की यहाँ सूचना है।

लोभ था और उन्होंने बीज लगाया था।......उस बीज का वृक्ष देखने की आशा मैंने रखी है। सामाजिक कार्य तो बहिनें करती ही हैं। किन्तु वह वैयक्तिक रूप में। मेरी इच्छा है कि किसी सामाजिक सेवा के लिए बहिनें संघ रूप में जिम्मेदार हों। ऐसा करने से संघ-शक्ति उत्पन्न होगी। यह शक्ति उत्पन्न हो गई कि व्यक्ति आयेगा और जायेगा। किन्तु संघ बना रहेगा। यह शक्ति ईश्वर ने केवल मनुष्य को ही दी है। स्त्रियों ने इस देश में यह शक्ति पैदा नहीं की है। इसमें दोष पुरुषों का है। किन्तु उसे रहने दो। आज हमें उस चक्कर में पड़ना नहीं है। यह शक्ति स्त्रियों में आनी ही चाहिए। यदि हम ऐसा मानते हैं तो उसे पैदा करने का हमें प्रयत्न करना चाहिए। फिर इसका आरम्भ अब मेरा पत्र मिलने तक और उसका उत्तर देने तक क्यों न हो जाय? धीरे-धीरे (अत्यन्त मंद गति से क्यों न हो) उसमें वृद्धि हो सकेगी। मेरा कथन तुम्हें ठीक समझ में आ गया हो, तेरे गले उतरा हो, और बहिनों को भी ठीक मालूम होता हो, उसमें योग देने को वे तैयार हों तो यह बात हाथ में लेनी चाहिए। किन्तु उसमें कठिनाइयाँ मालूम पड़ें अथवा कोई रहस्य न दिखाई दे तो यह बात छोड़ देनी चाहिए।

एक धर्म से दूसरे धर्म में लोगों को लेने की प्रथा मुझे जरा भी अच्छी नहीं लगती। दो विभिन्न धर्मों के स्त्री पुरुषों में विवाह होना असम्भव अथवा अयोग्य है, ऐसा मैं नहीं मानता।

हिन्दू धर्म का मूलभूत तथापि भिन्न तत्व गोरक्षण और वर्णाश्रम है, ऐसा मैं समझता हूँ।

किसी भी राष्ट्र को उन्नति के रास्ते जाना हो तो सत्य और अहिंसा का उसे आश्रय लेना चाहिए।

विद्यापीठ की ओर से प्रकाशित हुआ गुजराती जोडणी कोश (शुद्ध लेखन कोश) के दूसरे संस्करण की मेरी प्रति यहाँ होनी ही चाहिए।

ता० ८—४—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—२६]

'कला कला के लिए': आश्रम : शून्यवत् होने का अर्थ

चि०—, सचमुच तू लिखने की स्थिति में नहीं थी। पत्र लगभग हमेशा के इतना ही है किन्तु उसमें सौन्दर्य नहीं। जब खाने की आवश्यकता न हो तब खाना नहीं चाहिए। घूमने की आवश्यकता न हो तब घूमना नहीं चाहिए। वैसे ही लिखने की आवश्यकता न हो तब लिखना नहीं चाहिए। अथवा 'थकी हूँ अतः नहीं लिख सकती' इतना लिखकर पूरा करना।

दिवस के अन्त में आनन्द होने के बजाय मन में चिड़चिड़ाहट होती है, यह अच्छा लक्षण नहीं है। यह अनासक्ति तो नहीं ही है। मेरी सलाह है, मेरा आग्रह है कि तू अपना जञ्जाल, अपना विस्तार कम कर। उससे तेरा अथवा आश्रम का कुछ नुकसान न होगा। प्रफुल्ल चित्त से हुआ काम बढ़ने लगता है।

लेजिम में उत्पन्न होने वाले प्रश्नों पर तू ने जो लिखा है वह विचार न करते हुए लिखा गया है, ऐसी आशा है।* 'आर्ट फॉर आर्ट्स सेक' मनुष्य को कहाँ ले जाती है, तू नहीं जानती। उसके नाम पर आज पश्चिम के तरुण सीधे नरक में उतर पड़े हैं। 'आर्ट' की परिभाषा ही कदाचित् लिखते समय तेरे ध्यान में न होगी। किन्तु मेरे पत्र में सब बेडौल लिखा जायगा। यह तू ने मुझे पहिले ही सावधान कर दिया है, अतः मैं तुझे अधिक नहीं लिखता।

यह सम्भव है कि तू खुद को हिस्टीरिकल न दिखाई दे। ० ० ० ० भी वह देख न सकी होगी। और हिस्टीरिकल का अर्थ भी तुममें से किसी के ध्यान में न आया होगा। उस शब्द का अर्थ देखने के लिए तू ने कभी शब्द-कोश भी न खोला होगा। अपने एम० ए० वगैरह को अँग्रेज़ी आती ही है, ऐसा नहीं। उसमें भी ऐसे खास शब्दों का अर्थ बहुत कम लोगों को

---

* कला के लिए कला।

मालूम होता है। हिस्टीरिकल का तू एक अच्छा नमूना है। वह दोष ही है, ऐसा न समझना। किन्तु अन्त में हिस्टीरिया निकाल देने की आवश्यकता है। पर इस विषय की चर्चा में तुझे खींचने की इच्छा नहीं है। तू हिस्टीरिकल नहीं है, ऐसा चाहे समझ ले। तू सचाई पर रहना चाहती है इससे मैं निश्चिन्त हूँ। 'नहि कल्याण कृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।'

"आश्रम में जिन चीजों के पीछे हम लगते हैं उसे छोड़ते नहीं, यह आश्रम की विशेषता है।" इस प्रकार का तेरा वाक्य था। उसे मैं प्रमाण-पत्र कहूँगा। कदाचित् आज हम उसके लायक न होंगे; किन्तु अन्त में लायक हों, ऐसा आग्रह तो रखें। जो हमसे करते न बना उसका मुझे शोक नहीं है। मुझे उसका ध्यान है इसलिए मैं जागृत हूँ। जो चाहा था वह सीखने के लिए समय नहीं है, यह तो मेरी स्पष्ट कमी है। मेरी व्यवस्था-शक्ति कम, शिक्षा-शक्ति कम और समय-प्रमाण का ज्ञान भी कम है। इतना होने पर भी यदि संयोगवश मैं (आश्रम) के बाहर अधिक न रहा होता तो बहुत-सा कार्यक्रम चाहे जैसे पूरा किया होता। मुझे ऐसा अनुभव है। किन्तु बातों का विचार केवल इसलिए करना कि यदि अब भी कुछ सुधारा जा सकता हो तो सुधार लिया जाय। मुझसे जो न करते बना वह तुम सब विचार कर, तय करके बना सको तो करो। क्या क्या करना था, क्या क्या रह गया है, उसमें से क्या सम्भव है, यह समय निकाल कर जाँचो। बने सो करो। होगा ही नहीं, ऐसा मालूम हो तो अपरिहार्य को भूल जाओ। उसकी चिन्ता करते बैठने का कोई कारण नहीं।

शून्यवत् होना माने 'मैं करता हूँ' यह वृत्ति छोड़ना। इसमें निराशावाद को स्थान ही नहीं। महादेव ने और मैंने सप्ताह में दुगना काम किया, ऐसा कहा जा सकता है। सरदार को अभी समय पर कताई करने की आदत नहीं लगी है। उपवास हम तीनों ने किया।

ता० १८—४—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—३०]

धर्म-परिवर्तन : श्रद्धा की गति : ज्ञान, उपासना और कर्म : आवश्यकताओं पर संयम

चि०—, मैं समझता हूँ कि ० ० ० को खींचकर घुमाने मत ले जाओ। उसमें उत्साह न होगा तो वह घूम न सकेगी। उसे प्राणायाम सिखाओ, और थोड़ी सी 'पैसिव एक्सरसाइज' दो कि अभी बस है। 'पै० ए०' तुझे मालूम है।

धर्म-परिवर्तन के बारे में मेरा कहना यह नहीं है कि कभी परिवर्तन हो ही नहीं। किन्तु एक दूसरे को अपना धर्म बदलने के लिए प्रेरित न करना चाहिए। मेरा धर्म तो सच्चा और दूसरा झूठा, ऐसे जो विचार ऐसे आमंत्रण के पीछे हैं, उन्हें मैं दूषित समझता हूँ। किन्तु जहाँ जबरन अथवा गलत समझने के कारण किसी ने अपना धर्म छोड़ा होगा वहाँ वैसे मनुष्य को सत्य आचरण करने के लिए अर्थात् अपने मूल धर्म में आने के लिए रोक न होनी चाहिए। इतना ही नहीं बल्कि वैसे आदमियों को उत्तेजन देना उचित है। मुझे मेरा धर्म झूठा मालूम होता हो तो मुझे उसका त्याग करना चाहिए। दूसरे धर्मों में जो अच्छा मालूम होता हो उसे मैं अपने धर्म में ले सकता हूँ—लेना चाहिए। मेरा धर्म अपूर्ण मालूम होता हो तो उसे पूर्ण बनाना मेरा कर्तव्य है। उसमें दोष दिखाई दे तो उसे दूर करना यह भी कर्तव्य है।

* मीरा बाई को मैं ईसाई समझता हूँ—अब तो वह भी खुद को ईसाई समझती है। ईसाई होकर भी गीता भावपूर्वक पढ़ती है, इसमें मुझे विरोध नहीं मालूम होता। अपनी प्रार्थना अन्य धर्म के मनुष्य भी भक्ति से गाते हैं।

स्वराज्य मिलने पर मैं क्या करूँगा, यह सचमुच मैं नहीं जानता। उस

---

* मीरा बाई=मीरा बहिन (भूतपूर्व मिस स्लेड), गांधी जी की अनुगामिनी एक अंग्रेज महिला।

समय मुझे ईश्वर मार्ग दिखायेगा—जैसे आज वह दिखा रहा है। श्रद्धालु मनुष्य पहले से तैयारी नहीं कर रखते। पहले से तैयारी करती है वह श्रद्धा नहीं अथवा हो तो वह शिथिल श्रद्धा है।

ज्ञान, उपासना और कर्म ये ईश्वर-प्राप्ति के तीन विभिन्न मार्ग नहीं है—ये तीनों मिलकर एक मार्ग है। उनके तीन भाग सुविधा के लिए कर दिये गये हैं। पानी हाइड्रोजन आक्सिजन से बना है, किन्तु पानी माने हाइड्रोजन नहीं अथवा आक्सिजन भी नहीं। वैसे ही ज्ञान प्राप्तिमार्ग नहीं, अथवा भक्ति भी नहीं। प्राप्तिमार्ग तीनों का मिलकर रासायनिक प्रयोग है, यह साधारणतः कहा जा सकता है। इस उपमा में दोष है तो भी मुझे जो बताना है उसे समझने के लिए पर्याप्त है।

द्रौपदी की लाज बचाई, यह पानी की शराब बनाने की तरह चमत्कार नहीं है। संकट के समय ईश्वर अपने भक्तों की मदद करता है, यह विश्वास उपयोगी है। ऐसे उदाहरण संग्राह्य हैं। किन्तु ऐसी मदद की शर्त से कोई भक्ति करे तो वह व्यर्थ है।

जबरन् लोगों के शरीर मजबूत करने की पद्धति मुझे पसन्द नहीं। उसके लिए जबरदस्ती की आवश्यकता ही न होनी चाहिए। शरीर दुर्बल रहने देना किसी को पसन्द आता है, ऐसा सुनने में नहीं आया। यह शिक्षा का विषय है।

आवश्यकताएँ कम करना, यह आदर्श लोगों के सामने रखने लायक है। उसका फल जो होना हो सो हो। उसमें संधि कहाँ आती है? संधि करने न करने का प्रश्न ही नहीं। जो गरीब भूख के कारण मर रहे हैं उनकी आवश्यकताएँ बढ़ानी ही पड़ेंगी। किन्तु यह कोई नई बात नहीं। आज वे प्रयत्न चल ही रहे हैं।

ता० २२—४—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

---

* ईसा ने ऐसा चमत्कार दिखाया, यह उल्लेख बाइबल में है।

[पत्र—३१]

आश्रम की कल्पना : अपने प्रति असन्तोष : 'प्रेमल ज्योति तारो दाखवी'

चि०—, यदि तुझ पर काम का बोझा अधिक पड़ता हो तो वह कम नहीं होता, यह कहना मुझे यहीं जँचता। इन विचारों में मोह और दुर्बलता है। तुझे चिढ़ मालूम होने का कारण तू खुद ही होनी चाहिए। काम का बोझा उसका कारण नहीं, यह मैं समझ सकता हूँ। वैसा ही हो तो धीरे-धीरे तू बनती जायगी। क्योंकि बहुत देर तक तू अपने को न ठगेगी। इस बारे में मैं तुझे तंग करना नहीं चाहता। तू अपनी नाज़ुक तबीयत को मजबूत बनाये।

अपनी पुस्तकों में कितनी ही उर्दू पुस्तकें हैं। उनमें से कितनी ही इमाम साहब के घर हो सकती हैं। वहाँ भी जाँच कर तुम्हारे यदि उनके नाम पढ़ते न बने तो परशुराम जी पढ़वा कर बतायेंगे। उन पुस्तकों में सीरत्-उन्-नबी हो तो भेजो। मौ० शिवली ने लिखी है। दूसरी डा० मुहम्मद अली की लिखी हुई नबी (पैगम्बर) की जीवनी है। वह भी भेज। सीरत के दो भाग हैं।

वहाँ चारों ओर मज़दूर हैं, यही सच्चा जीवन है। आश्रम की कल्पना ही वैसी है। हाँ, यह सच है कि मज़दूर सत्यार्थी होने चाहिएँ। तू नहीं है? और भाई-बहिन नहीं हैं?—सभी यथाशक्ति हैं, ऐसा मैं मानता हूँ। 'आप कब आयेंगे', ऐसा तू पूछती है। आँखों का उपयोग करेगी तो मैं तुझे वहीं दिखाई दिये बिना न रहूँगा। मेरी आत्मा तो वहीं वास कर रही है। फिर शरीर यहाँ हो अथवा मिट्टी में मिले। शरीर वहाँ हो, तब मैं वहाँ न होऊँ, यह बिलकुल सम्भव है। तू इस सत्य को देख और माया को भूल जा।

असन्तोष चाहिए ही। किन्तु वह असन्तोष ख़ुद के बारे में हो। "अब क्या, अब मैं पूर्ण हो गया," ऐसा समझकर मैं बैठूँगा उसी दिन से मेरा विनाश शुरू हुआ समझो। अतः मुझे अपने बारे में असन्तोष मालूम होना ही चाहिए। इस असन्तोष का अर्थ मैं अपने कर्तव्य-कर्म में हमेशा परिवर्तन करने की ही इच्छा करूँ, यह कदापि नहीं है।

किन्तु यह सब तर्क से समझाया नहीं जा सकता। समय अपना काम करेगा ही। आज जहाँ घोर अँधेरा मालूम होता है वहाँ कल प्रकाश मालूम होगा। मुझे तो उस स्थिति का यथार्थ वर्णन करने वाला भजन 'प्रेमल ज्योति' मालूम होता है। गुजराती में भी अर्थ अच्छा आया है। अँग्रेज़ी तो अलौकिक है ही। ....।

'''तेरा वज़न क्या है। दूध-दही मिलाकर कितना लेती है ?

ता० १—५—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

[पत्र—३२]

आत्म-वञ्चना : आश्रम शोभा के लिए नहीं, सेवा के लिए : आध्यात्मिक उन्नति : योगः कर्मसु कौशलम् : प्रार्थना।

चि०—, आध्यात्मिक निरीक्षण करने की आदत डाली कि झूठा संकोच दूर हो जाता है। और हम जैसे हैं संसार के सामने दिखाई देने लगते हैं। यह स्पष्ट है कि यह बात सत्यशील आदमियों पर ही लागू होती है, दंभी मनुष्यों से अपना निरीक्षण बहुत दिनों तक करते ही न बनेगा—यह अशक्य है।

• ० ० के बारे में तूने लिखा, वह सब सच है। उससे ताकत के बाहर काम ही न लेना चाहिए। किसी से न लेना चाहिए। किन्तु साधारणतः मनुष्य ख़ुद को ठगता है, अपने बारे में खूब उदार बनता है और थोड़ा-सा भी किया तो बहुत कर लिया, ऐसा समझने लगता है। अतः सामान्यतः किसी ने बहुत काम किया हो तो भी उसे रोकने की मुझे इच्छा नहीं होती। ....

निरीक्षण करने के बारे में मैंने लिखा है, उससे कोई जड़वत् न बनेगा। एक मनुष्य भी आश्रम में रहकर जड़वत् बना तो भी कार्य-पद्धति में दोष है, ऐसा मैं कहूँगा। कार्य-पद्धति पूर्ण नहीं है, यह मुझे मालूम है। और आश्रम

में रहनेवाला कोई जड़ नहीं बना और कितने ही जड़ चेतनामय बन गये हैं। इस पर से मैं अनुमान करता हूँ कि कुछ नहीं तो कार्य-पद्धति इक्कावन प्रतिशत कार्यसाधिका होनी चाहिए। आश्रम में विभिन्न प्रवृत्तियों के संचालक अपने विषयों में पारंगत विशेषज्ञ नहीं हुए, इसमें दोष किसी का नहीं है। किन्तु एक तो आश्रम ने नई प्रणाली हाथ में ली है, अथवा पुरानी प्रणाली नये ढंग से चलाने का संकल्प किया है। इससे मनुष्य अपने आप विशारद बनते जायँगे। इससे समय का, द्रव्य का कुछ अयोग्य-सा प्रतीत होने वाला व्यय भी हुआ है। और इतना होने पर भी कई बार आश्रम शोभित न हो सका। किन्तु आश्रम शोभा के लिए नहीं, सेवा के लिए है। सेवा करते हुए यदि शोभा प्राप्त हुई तो अच्छा ही मालूम होगा। किन्तु निन्दा हुई तो भी सेवा करनी ही चाहिए। सारांश यह है कि जैसे-जैसे हम कुशल होते जायँगे वैसे-वैसे हमारे कार्य का परिमाण बढ़ेगा और फिर भी हमें उसका बोझ कम मालूम होगा। इसका ताज़ा उदाहरण यह है—बायें हाथ से चक्र घुमाते समय मेरे तार* केवल ६३ ही निकले; समय अधिक गया। परिश्रम अधिक मालूम हुआ। कुशलता का परिमाण बढ़ा, तब से कम समय में कम परिश्रम से मैं दो सौ से अधिक तार निकालने लगा। अब मगनरेंटिया* ले लिया है। कल २४ तार निकाले; समय बहुत दिया। आज थोड़े समय में ५६ तार निकाले। परिश्रम कम। जो एक आदमी और उसके छोटे से कार्य के बारे में सच है, वही संस्था के और उसके महान कार्य के बारे में सच है। योगः कर्मसु कौशलम्। कर्म माने सेवा कार्य—यज्ञ। हमारी सारी कठिनाइयाँ अपनी अकुशलता में हैं। कुशलता आई कि हमें आज जो कष्टकारक प्रतीत होता है वही आनन्द देने वाला मालूम होगा। तंत्र सुव्यवस्थित और सात्विक होगा तो कभी श्रम मालूम न होना चाहिए।

इसी बात की साधना के लिए तू आश्रम में आई है। वह तुम्हें सिखाया नहीं। सबको खुद वातावरण से उसे निकाल लेना है। तेरी तरह जो

---

* तार = ४ फुट। मगनरेंटिया = दो चक्रों का चरखा।

कोई न निकाल सकेगी वह आश्रम में अन्त तक न रह सकेगी। जिसे महत्वाकांक्षा नहीं वह रह जायगा, यह बात दूसरी है। आश्रम के वास्तव में स्वतंत्र संस्था होने के कारण जिसकी इच्छा हो उसे जितना ऊँचा जाना हो उतना ऊँचा जाने के लिए उसमें स्थान है। वह उसे कोई दे न सकेगा। तुझे अनुकूल हो, ऐसा वायु मंडल तुझी को उत्पन्न करना चाहिए। अपनी साथिनियों को तू वहाँ खींच सकेगी। किन्तु सच कहा जाय तो यह खुदगर्जी ही कहलायगी। तेरे बारे में तो जो वहाँ होंगे वे ही तेरे सगे-संगी हैं। तेरे में जो कुछ हो वह उनमें उँडेल; उनमें जो हो उसे तू ले। एक दो को छोड़कर किसी से भी तुझे लेने लायक कुछ नहीं है ऐसा समझती होगी तो तू मोहकूप में पड़ी हुई है। मेरी समझ से जिससे हम कुछ भी नहीं ले सकते, ऐसा संसार में कोई नहीं है।

रामकृष्ण के बारे में तूने जो लिखा वह सच हो सकता है। मैं अपने को किसी प्रकार सिद्ध नहीं मानता। अतः गलतियाँ होती ही होंगी। किन्तु मेरी गलतियाँ निर्दोष होने के कारण अब तक हानिकारक हुई नहीं दिखाई दीं। अतः मैं निश्चिन्त होकर मार्ग चल रहा हूँ। और साथियों को भी उसमें खींच रहा हूँ।

ता० ७—५—३२ बापू के आशीर्वाद

पुनश्च—प्रार्थना पर कई बार आक्रमण हुए हैं, किन्तु वह सोलह साल रह सकी है। प्रार्थना में जितना समय रोज जाता है, उसमें से कितना बचाया जा सकता है? यदि तू प्रार्थना की आवश्यकता स्वीकार करेगी तो उसके लिए खर्च होने वाले समय की शिकायत न करेगी। प्रत्येक चीज में दोष देखा जा सकता है। किन्तु सब तरफ से विचार करने पर यह ठीक है, ऐसा मालूम होता है। प्रार्थना में तुम्हें कौन से परिवर्तन चाहिएँ, वे मेरी जानकारी के लिए लिख। पैसिव व्यायाम दुर्बलों को सहायक होता है। उदाहरणः मालिश या अर्धशीर्षासन, अर्ध-सर्वांगासन, केवल हाथ या पैर धीरे-धीरे ऊपर करना। इसमें बीमार मनुष्य पड़ा रहता है और मानसिक सहकार करता रहता है।

[पत्र—३३]

भोजन में हरे पत्तों की आवश्यकता : प्रेम-विशेष नहीं, अहिंसा : ब्रह्मज्ञान : आश्रम का शिक्षण: अमेरिका के स्त्री-पुरुष

चि०—, तेरे वज़न और आहार के बारे में मैंने पूछा क्योंकि मुझे तेरे स्वास्थ्य के बारे में सन्देह हुआ। अधिक से अधिक कितना वजन था। तरकारियों में टमाटर और पालक ज़रा भी नहीं रहती ? सलाद लगाने वाले थे उसका क्या हुआ। सलाद अथवा मेथी किसी छोटी-सी क्यारी में तू खुद लगा सकती है। वह थोड़े ही दिनों में निकल आती है। कुछ न कुछ हरे पत्ते (भोजन में) होने ही चाहिएँ। कच्चे होने के कारण उचित ही मात्रा में खाये जायँगे। टमाटर बारहो महीने क्यों नहीं होते, मैं नहीं जानता। तू खोज निकाल।

० ० ० से मैं तुरन्त मिला और अब भी उनकी खोज-खबर लेता ही रहता हूँ। क्योंकि कूच में उनसे अच्छी पहिचान हुई थी। और तेरे लिए भी मुझे उनके जीवन में आकर्षण है क्योंकि तेरे जीवन में मालूम होता है। यह व्यक्तिगत प्रेम-विशेष का उदाहरण नहीं है, अहिंसा का है। अमुक के बारे में प्रेम, दूसरे के बारे में द्वेष अथवा दूसरे के बारे में प्रेम मालूम ही न होता हो तो वह प्रेम-विशेष है। मुझ में वैसा प्रेम नहीं है, ऐसा मैं समझता हूँ। तेरे बारे में जो करता हूँ वह तेरी आवश्यकताएँ ध्यान में लेकर, तुझे मेरी आवश्यकता है और मुझे तेरी आवश्यकता है इसलिए। क्योंकि मैंने तुझसे बहुत आशा रखी है। इसमें तुझे व्यवहार-बुद्धि दिखाई दे तो मैं उसे अस्वीकार नहीं करता। मैं इसे अहिंसक स्वभाव मानता हूँ।

उर्दू पुस्तकों के बारे में भूली न होगी।

सब एक साथ आश्रम से (जेल) जाने के लिए तैयार हुए हों तो वह मुझे ठीक नहीं जँचता। किन्तु अब आश्रम को इतने साल हो गये हैं कि मैं उसके बारे में चर्चा न करूँ, दुःख भी न करूँ और कुछ तो भी गलती है, ऐसा समझकर समय आने पर उसे सुधारने का प्रयत्न करूँ। जिन्हें आसानी से

रोक सकूँगा उन्हें रोकूँगा। आश्रम एकदम खाली होता हो तो, और तू खुशी से रुक सकती हो तो रुक जा। और काम करने वाले लौट कर आ जायँ तब तू बाहर निकल। किन्तु सच कहूँ तो तू और ० ० ० तय करो। यहाँ बैठकर मुझे क्या मालूम होगा ?

ता० १२—५—३२

आश्रम में दी जाने वाली शिक्षा का प्रश्न पुराना है। बोर्डिंग के साथ उसकी तुलना न हो सकेगी, ऐसा मैं समझता हूँ।.......... । मैं खुद एक नियम बना दूँगा। लड़कों के मन में हरेक बात बैठनी चाहिए। वे जितना सख्ती से करेंगे उतना निरर्थक होगा और सख्ती की परम्परा कायम रहेगी। छुट्टी नहीं दी तो वह लड़कों को प्रिय लगना चाहिए।

आश्रम की पाठशाला में तूने जो-जो किया उसके औचित्य-अनौचित्य के बारे में मुझे न्यायाधीश नहीं बनना है। मैं वहाँ होता तो अवश्य विचार किया होता। किन्तु यहाँ बैठे-बैठे मुझे वैसा नहीं करना है। तू आत्म-निरीक्षण करने वाली है। जहाँ दोष होंगे तू अन्त में सुधार ही लेगी।

तुझे ब्रह्मज्ञान सिखाने की मैंने इच्छा की या क्या यह ईश्वर जाने। किन्तु मैं ब्रह्मज्ञान जानती हूँ ऐसा कहकर तो तूने अपना अज्ञान प्रकट किया है और जो तर्क किये हैं उनसे तेरा अज्ञान ही प्रकट हुआ है। बुद्धि के द्वारा जो ब्रह्म समझता है वह ब्रह्म जानता ही नहीं। ब्रह्मज्ञान हृदय में होता है। ब्रह्म-ज्ञान माने प्रवृत्ति मात्र का त्याग, ऐसा बिल्कुल नहीं। बाहर से ज्ञानी और अज्ञानी समान ही होंगे। किन्तु दोनों की प्रवृत्तियों के हेतु उत्तर-दक्षिण के समान विरुद्ध होंगे। राम नाम ब्रह्मज्ञान का विरोधी नहीं है। दोनों एक हो सकते हैं। जिस ब्रह्मज्ञानी को रामनाम-की छुआछूत मालूम होती है, वह अज्ञान-कूप में पड़ा हुआ है और गोते खा रहा है। जो केवल ओठों से राम नाम बड़बड़ाता है वह ओठों को सुखाता है और समय की हत्या करता है। ब्रह्मज्ञान और मेरा शारीरिक अस्तित्व पसन्द करना, ये विरोधी बातें ही होनी चाहिएँ, ऐसा नहीं किन्तु यदि मेरी अनुपस्थिति कर्तव्यपरायणता को कम करे तो वह ब्रह्मज्ञान नहीं, मोह है। मुझे ब्रह्मज्ञान हुआ है, ऐसा कहने वाले

को उसके न होने की पूरी सम्भावना है। वह मूक ज्ञान है, स्वयं प्रकाश है। सूर्य को अपना प्रकाश मुँह से नहीं बताना पड़ता। वह है, यह हमें दिखाई देता है। यही बात ब्रह्मज्ञान के बारे में भी है।

मैं इस सरकार को मानता था, तब मैं समझता था कि सरकार के कारण इस देश का अन्त में लाभ ही होने वाला है। उनका हेतु शुभ है। किन्तु इस प्रश्न की गहराई में जाना अधिक सम्भव नहीं।

अमेरिका में स्त्री पुरुषों के व्यवहार के बारे में जो साहित्य प्रकाशित हो रहा है वह मुझे पसन्द नहीं। उसके बारे में लिखने की मुझे इच्छा तो है।

लड़के प्रश्न करते हैं तब उन्हें सीधा उत्तर देना चाहिए। सिनेमा के बारे में मुझे नहीं मालूम। नाटक को जगह है। ईश्वर-प्राप्ति के लिए मुझे अपनी अनासक्ति ही अच्छी लगती है। उसमें सब कुछ आ जाता है।

ता० १७—५—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—३४]

मेरे वचनों में अध्याहार : आश्रम और लड़कियाँ : आश्रम और शिक्षण : पैसिव व्यायाम का तात्पर्य : प्रार्थना : व्यक्तिप्रेम बनाम विश्वप्रेम

चि०—, आने वाले सप्ताह में तेरे मुझसे मिलने आने की सम्भावना है। फिर भी तेरे पत्र का उत्तर देना ही ठीक है। और कल जो हुआ उस पर से यह दिखाई देता है कि मेरी भेंट होना हमेशा अनिश्चित ही समझना चाहिए।.......

.......आश्रम में बड़ी हुई लड़कियाँ इतनी दुबली दिखाई देती हैं, यह पहेली है। वह मैं बूझ न सका। मेरे पास उसके बारे में अनुमान है। किन्तु जब तक मैं उनका आधार (प्रमाण) न दे सकूँ, तब तक उसकी चर्चा बेकार है। अपने से हो उतनी खोज करनी चाहिए। ये लड़कियाँ बाहर जाकर भी अच्छी होती ही हैं, यह कोई नियम नहीं है। यह बात ध्यान में रखने लायक है।

. .....मेरे वचनों में मुझे कहीं व्यामिश्रता नहीं दिखाई दी। हो तो वह मेरे अनजान में और मेरा भाषा पर कम अधिकार होने के कारण होगी। मेरे वचन संक्षिप्त होने के कारण उनमें अध्याहार होता ही है। किन्तु वे रेखागणित की तरह हैं।

जिन लड़कों को अँग्रेज़ी सीखने की इच्छा हो, उन्होंने हिन्दी और संस्कृत की ओर ध्यान दिया हो और गुजराती ठीक कर ली हो तो उन्हें अँग्रेज़ी अवश्य सीखनी चाहिए। सिखानेवाले की सुविधा पर भी वह आश्रित है किन्तु वैसी सुविधा अपने पास होनी चाहिए।

'पैसिव व्यायाम' का मेरा अर्थ कदाचित् तेरी समझ में न आया होगा। खुद करना हो उसे पैसिव नहीं कहना चाहिए। यह बीमार आदमियों के लिए है। मैं बीमार हूँ और मेरी अँतड़ियों को व्यायाम देना हो तो उन्हें किसी से मालिश कराया अथवा मेरे पैर बीच के हिस्से (धड़) के कोण में रहें ऐसे कभी ऊँचे किये और फिर सीधे किये और इसी प्रकार बराबर हिलाये। मुझे कुछ भी करना न पड़ा तो उसे पैसिव व्यायाम कहना चाहिए। तेरे ख्याल में ऐसा आया हुआ नहीं दिखाई देता।

मौन प्रार्थना में दो हेतु थे। मन को विश्राम देने का तो था ही किन्तु उसके सिवा मनको अन्तर्मुख करना भी कठिन था।

(हाथ में लिए हुए) प्रत्येक कार्य में परिवर्तन करते समय धोखा मालूम होना चाहिए। अधीरता और अशान्ति न होनी चाहिए। इसी से तटस्थता प्राप्त होगी।

मुझमें एकाग्रता होगी, किन्तु मुझे सन्तुष्ट करने लायक तो निश्चित ही नहीं है। उसके बारे में मैं प्रयत्नशील हूँ किन्तु अधीर नहीं।

बच्चों को पूरी प्रार्थना में प्रेम न होता हो तो उनके लिए कुछ दूसरी व्यवस्था करनी चाहिए। जैसा प्रभुदास ने किया था। बच्चे श्रद्धा तथा शान्ति के साथ बैठ सकें तो अच्छा है।

सोलह साल से यही प्रार्थना चल रही है; यह कहानी नहीं सच बात है। उतने साल सब आते थे, यह बताने का मेरा उद्देश्य नहीं है। आश्रम

सभी कठिनाइयों और टीकाओं के बीच इसी प्रार्थना में लगकर रहा है और उसमें से ही बहुत लोगों ने शान्ति का चिन्तन किया है। उसका त्याग अथवा उसमें बहुत से परिवर्तन बहुत मजबूत कारण हुए बिना न करना चाहिए। इतना ही कहने का हेतु था। बहिनों की (अलग) प्रार्थना शाम को अच्छी न लगेगी। शाम का समय वाचन आदि की ओर दिया जा सकेगा।

तेरे बारे में तू ने लिखा, वह ठीक है। तेरी बुद्धि को और हृदय को जो सच मालूम हो वही तुझे करना चाहिए। मैं अधीर नहीं हूँ। मैं मुझे जो उचित मालूम होता है वह बताकर मुक्त हो जाता हूँ। जबरन् वह बात मैं तुझे स्वीकार न कराऊँगा। मित्र के रूप में ही उपयोगी हो सकता हूँ। उसमें भी मेरा अधिक से अधिक अधिकार मेरे दीर्घ अनुभव का ही होगा। यदि उसमें से एक का भी प्रतिबिम्ब तेरे हृदय में न पड़ा तो मेरे लाखों अनुभव तेरे विषय में व्यर्थ हैं। आश्रम के बारे में मेरा एक दावा है। जो आवे उसे वह पंख देता है। फिर उसे जिधर उड़ना हो वह उड़े। अपनी इच्छा से यदि वह रहे तो ठीक, न रहे तो भी आश्रम ने अपना धर्म पालन किया। ऐसा बहुतों के बारे में हुआ, यह सिद्ध किया जा सकता है। स्त्रियों के बारे में अधिक। ऐसी लड़कियाँ आश्रम में आकर गई हैं जिनमें कुछ भी उत्साह नहीं था, वे आज अपने को स्वतन्त्र समझती हैं, और हैं भी।

व्यक्ति-प्रेम मात्र तिरस्करणीय नहीं है, वह विश्वप्रेम का, प्रभु-प्रेम का विरोधी न होना चाहिए। बा के विषय में मुझे प्रेम है किन्तु वह प्रभु-प्रेम के गर्भ में है। मैं विषयी था, तब वह प्रभु-प्रेम का विरोधी था अतः त्याज्य था......।

ता० १६—५—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—३५]

प्रार्थना : साकार या निराकार ? : सन्त वचनों का गूढ़ार्थ : मासिकधर्म : कार्यतन्मयता : युरोपीय संगीत

चि०—, तुझे मूर्ख ही कहना चाहिए। प्रश्न पूछना बच्चों को अच्छा न लगते हुए उन्होंने लिखा तो वह समय का अपव्यय है। लिखने के लिए ही क्यों न हो। प्रेम से लिखा तो उसमें कुछ अर्थ है। लड़कों ने इच्छा न रखी तो भी पत्र जाने पर उन्हें आनन्द होना निश्चित ही है। उसमें स्वार्थ का लेश भी नहीं होता.......।

प्रार्थना में साकार मूर्ति का मैंने निषेध नहीं किया है; हाँ निराकार को ऊँचा स्थान दिया है। कदाचित् ऐसा भेद करना ठीक न होगा। किसी को कुछ किसी को कुछ अच्छा लगेगा। उसमें तुलना को अवकाश न होना चाहिए। मेरी दृष्टि से निराकार अधिक अच्छा है। शंकर, रामानुज के बारे में (तेरा भेजा हुआ) पृथक्करण मुझे ठीक न मालूम हुआ। परिस्थिति से अनुभव का प्रभाव अधिक होता है। सत्य के पुजारी पर परिस्थिति का प्रभाव न पड़ना चाहिए। उसको भेद कर उसमें से पार हो जाना ही उसका कर्तव्य है। परिस्थिति के कारण बने हुए कितने ही विचार गलत ठहरते हैं, यह हम देखते हैं। इसका प्रसिद्ध उदाहरण आत्मा और देह का है। आत्मा का आज देह से निकट सम्बन्ध है इसलिए देह से विभिन्न आत्मा तुरन्त दिखाई नहीं देती। इस परिस्थिति का भेद कर जिसने 'नेति' (यह नहीं) इस प्रथम वचन का उच्चारण किया, उसकी शक्ति की बराबरी आज तक कोई न कर सका। ऐसे अनेक उदाहरण तुझे आसानी से दिखाई देंगे। तुकाराम आदि सन्तों के वचनों का शब्दार्थ निकालना जरा भी उचित नहीं है। उनका एक वचन कुछ दिन हुए मेरे पढ़ने में आया है। वह तेरे लिए यहाँ दे रहा हूँ :

*केलामातीचापशुपति, परि मातीसी कायमहती ?
शिव पूजा शिवासि पावे, माती माती मांजी सामावे ।
केला पाषाणाचा विष्णु, परि पाषाण नव्हे विष्णु ।
विष्णुपूजा विष्णुसि अर्पे, पाषाण राहे पाषाण रूपें ।

इसमें से मैं यह सार निकालता हूँ कि ऐसे साधु-सन्तों की भाषा के पीछे जो कल्पना होती है वह देखनी चाहिए। वे साकार ईश्वर का चित्र खींचते हैं किन्तु भजन निराकार का करते हैं। हम साधारण जन यह नहीं कर सकते अतः उनका रहस्य न समझ कर आचरण किया कि मृत्यु निश्चित है।

उर्दू पढ़ सकने वाले कोई यदि इमाम साहब के घर गये तो पुस्तक तुरन्त मिल सकेगी। वहाँ मीरा बेन का उर्दू-अँग्रेजी शब्दकोश है और अँग्रेजी-उर्दू का भी। वे दोनों साथ ही भेजो।

......इमाम साहब का घर क्या कभी साफ किया जाता है। जहाँ लोगों का आवास न हो ऐसे घर आठवें-पन्द्रहवें दिन साफ होने चाहिएँ।

आदत नहीं पड़ी है, तब तक ही समय का हिसाब लिखना कठिन मालूम होगा। बाद में उसके लिए ज़रा भी समय न जाना चाहिए। सब कुछ ज्ञान के साथ (समझ-बूझकर) हो तभी वह शोभित होता और सफल होता है।

दक्षिण अफ्रीका के बच्चों का उदाहरण देता हूँ। वह यहाँ के बच्चों की निन्दा करने के लिए नहीं किन्तु प्रोत्साहन देने के लिए। यहाँ के बच्चे भी काम करने लायक हैं। अर्थात् उनसे कोई काम कराने वाला हो तो। तू तो है न ?

---

*"मिट्टी का पशुपति (शिव) बनाया तो उससे मिट्टी की क्या महत्ता। शिव की पूजा शिव को प्राप्त होती है, और मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है। पत्थर का विष्णु बनाया किन्तु विष्णु पत्थर नहीं हैं। विष्णु की पूजा विष्णु को प्राप्त होती है और पत्थर पत्थर के रूप में रह जाता है।"

कमर के लिए तुझे गरम पानी में बैठना चाहिए। वैसा करने से दर्द दूर होता है और मासिक धर्म पर भी उसका अच्छा फल होता है। डाक्टर का क्या कहना है, लिखो। ऐसे रोगो का जड़ से इलाज होना चाहिए।

तेरा कार्यक्रम मैंने अच्छी तरह देखा। वह अधिक है। उसमें काट-छाँट आसानी से हो सकती है। १२—३० से ५—४० तक उद्योग वर्ग है। अर्थात् पाँच घंटे दस मिनट हुए। इसमें से एक घंटा कम किया कि आवश्यक अवकाश निकाल लिया जा सकता है। इस समय एकान्त में सोने की इच्छा हो तो सोया जाय अथवा केवल आराम किया जाय। आराम मालूम हो ऐसा जो चाहे सो करो। किन्तु गप-शप में या और दूसरे कामों के लिए वह समय न देना चाहिए। उस घंटे का उसी समय उपयोग न करना हो तो दूसरे काम आगे बढ़ाने लायक हों तो उन्हें बढ़ाकर रात का समय लेना चाहिए।

जो अपने काम में तन्मय हो गया है उसे बोझ या नुकसान कुछ नहीं मालूम होता। जिसे काम में प्रेम नहीं उसे थोड़ा भी अधिक मालूम होता है। जैसे कैदियों को एक दिन वर्ष की तरह मालूम होता है, भोगियों को एक वर्ष एक दिन की तरह।

युरोप का संगीत पहले सुनता था तो ऊब जाता था। अब उसमें कुछ समझने लगा हूँ। और अच्छी मिठास भी मालूम होने लगी है।

"यहाँ (आश्रम में) पढ़ने का लोभ न रखा जा सकेगा", तेरा यह कहना ठीक नहीं। पढ़ने को बहुत न मिलेगा, यह सच है। वह गौण है, यह भी सच है फिर भी आश्रम में रहने वाले बहुतों ने पढ़ा है। तेरे निराशा के शब्द मुझे पसन्द नहीं आते। जहाँ अपूर्णता मालूम होती हो वहाँ पूर्णता लाने का प्रयत्न कर किन्तु अन्त में अपूर्णता ही मालूम हो तो—याने सब जमा खर्च करने पर बाकी निकालते समय दोष बढ़ते हुए दिखाई देते हों तो—उसका त्याग करना अभीष्ट है।

तू लम्बे पत्र लिखती है, इसलिए क्षमा माँगने की आवश्यकता नहीं है। मुझे वे उबाने वाले नहीं होते क्योंकि वे पत्र तेरे उस समय के हृदय के प्रतिबिम्ब होते हैं। उनसे मैं सीखता हूँ।

ता०—१७—६—३२ बापू के आशीर्वाद
बारदोली

[पत्र—२६]

अधिकार का मद : दुःस्थिति में भलाई देखना

चि०—, तेरा पत्र मुझे ज़रा भी बड़ा न मालूम हुआ क्योंकि मुझे जो चाहिए था वह वर्णन तूने दिया है। सिंहगढ़ पर मैं तीन बार गया हूँ। एक बार तो लोकमान्य (तिलक) थे, तब गया था। उस समय हम खूब मिले, उनका घर देखा......हरी नारायण आपटे से मैं मिला था। उनके उपन्यास पढ़ने की इच्छा बहुत है किन्तु इस समय कुछ नया हाथ में लेने की हिम्मत ही नहीं होती। उर्दू, अर्थशास्त्र, आकाश—दर्शन, चरखा, पत्र-व्यवहार यही चीज़ें किसी प्रकार पूरी हो जाती हैं। बीच-बीच में कुछ न कुछ फुटकर पढ़ना ही होता है।

सुपरिंटेंडेंट के बारे में तूने जो लिखा वह ठीक है। मैं सब देख और समझ सका था। किन्तु यह सब सहन करना चाहिए। मनुष्य, इस दृष्टि से, वह बुरा नहीं है किन्तु अधिकार बहुत बुरी चीज़ है। और वह अधिकार भी किस जगह ? तब हमें ऐसा हिसाब करना चाहिए कि दु.स्थिति में भी थोड़ी-बहुत आदमीयत रखी जाती है, यह कितना अच्छा है। किसे मालूम कि यदि मैं उसकी जगह पर होता तो कितना नीचे उतरा होता। तुझे आये वैसे बहुत से अनुभव आते रहेंगे। सहन शक्ति, उदारता, दमन, विवेक इसी में से सीखना। सब अनुकूल हो तब तो सभी लोग अपने को भला कहलाने लायक आचरण करते हैं।

स्त्री-पुरुषों के बारे में लिखने की इच्छा थी। किन्तु तू प्रश्न भेज तो अधिक अच्छा।

अँग्रेज़ी का अध्ययन बन्द मत करो। नवीन विद्यार्थियों को अमुक सीखने के पहले वह नहीं सिखाना बस.......।

तेरा शरीर ताँबे के समान (मजबूत) होना चाहिए। मछलियाँ खाने का प्रतिबन्ध मानती न हो और उससे शरीर अच्छा रहेगा, ऐसा मालूम होता हो तो बाहर जाकर खाकर रह सकती हो। इमाम साहब ऐसा ही करते थे। इस विषय की विशेष चर्चा करनी हो तो करो।

ता०—२०—६—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

[पत्र—३७]

आश्रम और मांसाहार : स्त्री-पुरुष-व्यवहार के विषय में बच्चों का कुतूहल : पति-पत्नी : मासिक धर्म : अनासक्त की कार्यशक्ति

चि०—, उर्दू पुस्तकों में नदवी के नाम पर दो खण्ड हैं। कुछ खण्ड शिबली के बजाय नदवी ने लिखे हैं। कदाचित् पुस्तकों पर मौ० सुलेमान नदवी यह लिखा होगा।

मछली के बारे में मैंने कुछ तेरे लिए अपवाद नहीं किया। काड लिवर आयल निषिद्ध होने पर भी मैंने उसे आश्रम में चलने दिया है। मांस-मछली को मांस-मछली के रूप में आश्रम के कारण मर्यादा रखी है; किन्तु व्यक्ति के रूप में नहीं रखी, रखते न बनेगी। मैंने कभी नहीं रखी।

इमाम साहब बाहर जाकर खा सकते थे। समझ लो कि तेरे स्थान पर नारायणदास ही हो; उसने तो आजीवन मांस नहीं खाया है। किन्तु (मान लो) उसे भयंकर बीमारी हुई, और उसे मांस खाकर जीवित रहने की इच्छा हो तो मैं उसे मांस खाने के लिए ज़रा भी न रोकूँगा। मेरे विचार उसे मालूम हैं, धर्म भी मालूम है, फिर भी मृत्यु का समय यह अलग चीज़ है। उस समय इच्छा हो तो उसमें बाधा न डालने का मेरा धर्म है। इसके विपरीत कोई बच्चा हो और उसके बारे में मुझे तय करना हो तो मैं

उसे मरने दूँगा किन्तु मारने न दूँगा। तुझे मालूम है कि ऐसा प्रसंग बा के लिए आया था ? बहुत करके यह प्रसंग 'आत्मकथा' में आया है। तुझे मालूम न हो और वहाँ कोई न जानता हो तो लिखो, लिखकर भेजूँगा। वह हम दोनों के लिए—बा और मेरे लिए पुण्य-प्रसंग था। अब समझ में आया ? मुझको तुझे मछली खाने का आग्रह नहीं करना है। उसके बिना मृत्यु आई तो मरने के लिए तू तैयार हो तो मैं तुझे मरने देने के लिए तैयार हूँ। मछली खाकर जीवित भी रही तो वह अन्त में मरने के लिए ही होगा न ? किन्तु यह जो मानता है और पालन करता है, उसीका धर्म है। यह धर्म दूध के बारे में मैं अपने ऊपर ही कहाँ लागू करता हूँ। फिर भी समस्त प्राणियों के दूध का त्याग करना यह धर्म दीपक की तरह मुझे दिखाई दे रहा है। किन्तु ऐसे धर्म दूसरों को पालन कराने नहीं होते, खुद पालन करने होते हैं। इति।

× × ×

स्त्री-पुरुषों के बारे में तू ने ठीक पूछा। जिस-जिस विषय में लड़कों को कौतूहल हो वे विषय हमें मालूम हों तो लड़कों को बताने चाहिएँ, न मालूम हों तो अपना अज्ञान स्वीकार करना चाहिए। बताने लायक न हों तो रोकना और औरों से भी न पूछो, यह कहना। किन्तु कभी उन्हें उड़ा न देना चाहिए। हम समझते हैं, उससे ये बातें लड़कों को अधिक मालूम होती हैं और जो मालूम न होंगी उन बातों के बारे में हमने ज्ञान न दिया तो वे अयोग्य मार्ग से प्राप्त करना सीखेंगे। ऐसा हो तो भी देने लायक जो न हो वह यह धोखा मानकर भी न देना चाहिए। बीभत्स क्रियाओं का ज्ञान उनके माँगने पर भी दिया ही न जाय। फिर वे हमारी रुकावट को न मानकर टेढ़े-मेढ़े मार्ग से चाहे भले ही प्राप्त कर लें।

पक्षियों में होने वाली क्रिया लड़कों ने देखी और उसके बारे में जानने की उन्हें इच्छा हुई तो मैं उनकी इच्छा अवश्य तृप्त करूँगा और उस बीच में ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ाऊँगा—पशु-पक्षी और इनमें का अन्तर सिखाऊँगा। जो स्त्री-पुरुष वैसा ही आचरण करते हैं वे मनुष्य शरीर प्राप्त करने पर भी

उसमें पशु-पक्षियों की तरह आचरण करते हैं। इसमें निन्दा नहीं, सच्ची स्थिति का वर्णन है। पशुत्व से निकलने के लिए मनुष्य का रूप और बुद्धि प्राप्त हुई है।

मासिक धर्म का पूरा ज्ञान उस अवस्था को पहुँची हुई लड़कियों को देना चाहिए। छोटी लड़कियाँ उसे समझें और पूछें तो वे समझ सकें इतना उन्हें समझा देना चाहिए।

लड़के अथवा लड़कियाँ, हम कितना भी प्रयत्न करें, कभी अन्त तक अबोध न रह सकेंगी। यह जानकर उन सबको अमुक समय पर यह ज्ञान देना ही अच्छा है। यह ज्ञान प्राप्त होने के कारण ब्रह्मचर्य पालन करते नहीं बनता, ऐसी जिनकी स्थिति होगी उनका दुर्बल ब्रह्मचर्य हमारे काम का नहीं। यह ज्ञान प्राप्त होते ही ब्रह्मचर्य अधिक सबल होना चाहिए। मेरे खुद के बारे में ऐसा ही हुआ है।

ज्ञान लेने-देने के अनेक प्रकार हैं। एक अपने विकारों की वृद्धि करने के लिए ज्ञान प्राप्त करता है, दूसरे को वह अनायास प्राप्त होता है, तीसरा विकारों का शमन करने के लिए, दूसरों को मदद करने के लिए वह ज्ञान प्राप्त करता है।

यह ज्ञान देने की योग्यता हो तभी और (जिसमें देने की योग्यता हो) उसी को|उसे देना चाहिए। 'तुझे ऐसा बनना चाहिए। आत्म-विश्वास चाहिए कि ज्ञान देने से लड़कियों में विकार ज़रा भी उत्पन्न न होंगे। विकार शमन करने के लिए वह ज्ञान तू दे रही हो, इस ओर तेरा ध्यान होना चाहिए। यदि तेरे में विकार उत्पन्न होने की सम्भावना हो तो वह ज्ञान देने के समय तुझमें विकार उत्पन्न न हों, इस ओर तुझे ध्यान देना चाहिए।

स्त्री-पुरुष के सांसारिक जीवन की तह में पति-पत्नी इस नाते भोग है। हिन्दू धर्म ने उसमें त्याग उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। अथवा सभी धर्मों ने वैसा प्रयत्न किया है, ऐसा कहा जा सकता है।

पति यह ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर है, तो पत्नी भी उसी प्रकार है। पत्नी दासी नहीं, समान अधिकार वाली मित्र है, सहचारिणी है। दोनों एक दूसरे के गुरु हैं।

लड़कियों का हिस्सा लड़कों के बराबर ही होना चाहिए। कोई भी जो सम्पत्ति पैदा करें उसमें पति-पत्नी दोनों ही समान हकदार हैं। पति यह पत्नी की सहायता से ही पैदा करता है। चाहे पत्नी रसोई ही क्यों न बनाती हो! वह दासी नहीं, हिस्सेदार है।

पत्नी के विषय में पति यदि अन्याय करता हो, तो उससे अलग होने का उसे अधिकार है।

लड़कों पर दोनों का समान हक है। वे बड़े हो गये कि किसी का नहीं। पत्नी नालायक होगी तो उसका हक उड़ जायगा; यही बात पति के सम्बन्ध में भी है।

सारांश यह कि स्त्री-पुरुषों में प्रकृति ने जो भेद रखे हैं और जो खुली आँखों से दिखाई देने लायक हैं उनके सिवा और किसी प्रकार के भेद मुझे स्वीकार नहीं हैं।

० ० ० में अनासक्ति से कार्य करने की बड़ी शक्ति है। अनासक्त मनुष्य आसक्त की अपेक्षा अधिक काम करता है और खाली रहने की तरह दिखाई देता है। वह सबके बाद थकता है। सच पूछा जाय तो उसे श्रम मालूम ही न होना चाहिए। किन्तु यह हुआ आदर्श। तू वहाँ है ही, तुझे वहाँ अशान्ति दिखाई दी, खुद को ठग रही है ऐसा दिखाई दिया तो तेरा धर्म मुझसे अलग हो गया। तुझे ० ० ० को सावधान करना चाहिए। मैं भी वहाँ रहूँगा और प्रत्यक्ष वह जो कहता है, उससे कुछ अलग देखूँगा तो उसे सावधान करूँगा। तेरे सावधान करती रहने पर भी वह तेरा विरोध करे तो उसका सुनना; जब तक तू उसे सत्यवादी समझती है तब तक। बहुत बार हमारी आँखें भी हमें ठगती हैं। तू खिन्न है ऐसा मुझे दिखाई दिया और तू ने वह अस्वीकार किया तो मुझे तेरा सुनना ही चाहिए। मुझसे तू छिपाती है ऐसा मेरा विचार हुआ या मुझे सन्देह हुआ तो अलग

बात है। फिर मुझे तुझसे पूछने का कोई कारण नहीं। उसे पहचान कर साधन खोजना मेरा काम है। किन्तु आश्रम-जीवन ऐसा नहीं चल सकता। उसकी तो जड़ में सत्य है। वहाँ शुभ हेतु से भी ठगना ठीक नहीं।......

*४ जुलाई की राह जरूर देखना। किस वर्ष की ४ जुलाई यह ध्यान में लेने लायक अवश्य है। वर्ष चाहे जो हो, महीना और तारीख का निश्चय हो गया, यह क्या कम है। क्योंकि कम से कम दूसरे किसी महीने की या दूसरी किसी तारीख की राह न देखनी पड़ेगी। ४ जुलाई बीत जाय तो १९३३ की जुलाई तक शान्त रहना चाहिए।

ता०—२३—६—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—३८]

पूर्णता लाने की चेष्टा : बकरों की बलि : सखी भाव से भक्ति : भौतिक विज्ञान : मोनोडायट

चि०—, तू तीन वर्ष की हुई, ऐसा मैं कहता हूँ। तू कहती है वह सच है। जब तुझे मैंने बम्बई से साथ लिया तब तू टिक सकेगी या नहीं, इसका मुझे सन्देह था। किन्तु तू समझती है उतना तो नहीं था। क्योंकि तू अपने वचनों पर खड़ी हुई। और जो मनुष्य अपने वचनों पर दृढ़ रहता है उसके बारे में मुझे सन्देह नहीं रहता.....। किन्तु तू रही, इतने दिन रहेगी ही, इसका मुझे विश्वास नहीं था। ऐसी उस समय की मेरी (मनः—) स्थिति मुझे स्मरण है। मेरी ऐसी इच्छा अवश्य है कि जैसे तूने तीन साल बिताये वैसे पूरा जीवन बिताने का निश्चय कर और वह अनिश्चित रह कर, जैसा बीत जाय, बीत जाय, इस प्रकार नहीं। तू आश्रम की और आश्रम तेरा, ऐसी दृढ़ता के साथ मानकर और समझ कर। किन्तु मेरा कोई आग्रह नहीं। इस सम्बन्ध में मुझसे केवल इच्छा ही प्रदर्शित करना

---

*महात्माजी ४ जुलाई को छूटेंगे ऐसी भविष्यवाणी किसी ने की थी।

बन सकता है। जब तक तुझे आसानी से आश्रम तेरा ही है ऐसा मालूम न होगा तब तक तू निश्चय न कर सकेगी। मैंने अपनी इच्छा तुझे बता दी।

यह हुआ तेरे आश्रम-जन्म-दिन के बारे में। तेरा *दूसरा जन्म-दिन १३ जुलाई को आ रहा है। और यह पत्र तुझे ८ तारीख के आसपास मिलेगा। मेरा आशीर्वाद है ही। तेरी सर्वोच्च अभिलाषाएँ सफल हों। उस दिशा में तेरे प्रयत्न चल रहे हैं इसमें मुझे सन्देह नहीं। उतनी आयु और उतना स्वास्थ्य भी साथ होना चाहिए। वह भी रहेगा, ऐसा मैं समझता हूँ। किन्तु तीनों का (अभिलाषाओं की यशस्विता, आयु तथा स्वास्थ्य) आधार अन्त में तुझ पर या मुझ पर नहीं है। सबकुछ उसे सौंपा गया है। जैसा उसे पसन्द होगा, वैसा वह करेगा और वह जो करेगा वह शुभ होगा ही। १३ तारीख का अपना हिसाब भेजना। उस दिन कौन सा निश्चय करेगी यह लिख। जन्म-तिथि के दिन कोई न कोई नया निश्चय करना चाहिए, यह मैं सब को सुझाता हूँ। तुझे मालूम है या नहीं ? ज्योतिषियों के कहने पर विश्वास मत रख। उनका कहना सच हो तो भी वह समझने से कोई लाभ नहीं। हानि स्पष्ट है।

उर्दू पुस्तकों में पैगम्बर के जितने चरित्र मिलें वे सब, अर-ब-ए-सहाबा के दो भाग और खुलहा-ए-राशहीन, अँग्रेज़ी-उर्दू और उर्दू-अँग्रेज़ी शब्दकोश शीघ्र भेज दे......

सारे घर नियमित रीति से अमुक दिन साफ होने ही चाहिएँ। सामान की देख रेख और सफाई होनी चाहिए। इसके लिए समय निकाले बिना नहीं चल सकता।

जिसकी संगति में—फिर वह व्यक्ति हो समाज हो या संस्था हो—अपूर्णता मालूम हो वहाँ पूर्णता लाने का प्रयत्न करना अपना धर्म है। गुणों की अपेक्षा दोष बढ़ते हों तो उनका त्याग—असहयोग—धर्म है। यह शाश्वत सिद्धान्त है। वही मैंने लिखा था। उस वाक्य से मैंने तुझे आश्रम या

* भारतीय पंचांग के अनुसार।

दूसरा कुछ छोड़ने के लिए नहीं कहा था। मैंने तो तुझे अमुक अवस्था में मनुष्य मात्र का जो धर्म माना गया है, वह बताया।

बंगाल में, कलकत्ते में रोज दिन-दहाड़े हजारों बकरों-बकरियों का बलि काली माता को दिया जाता है, वह रोकने की योग्यता आवे इसके लिए मैं ईश्वर से याचना किया करता हूँ। यह तुझे मालूम नहीं था?

मनुष्य (पुरुषभक्त) खुद को गोपियों की उपमा देता है, यह मुझे मालूम है। वह केवल भक्ति-भाव से होता हो तो उसमें मुझे कुछ भी बुरा नहीं मालूम होता। ईश्वर के सामने सभी अबला हैं।

स्वराज्य में मनुष्य हिमालय के शिखर की तथा उत्तर ध्रुव की खोज करने के लिए अवश्य निकलेंगे।

भौतिकशास्त्र का सामान्य ज्ञान मैं लाभदायक समझता हूँ।

मेरे आहार के प्रयोगों से मेरा कुछ भी नुकसान नहीं हुआ है। वे आठ साल भी चले है और सात दिन भी चले हैं।

मोनोडायट (एक समय में एक ही चीज़ खाना) में लाभ है ही।

ता० १०—६—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—३६]

उपयोगिता और सजावट : दूसरों का फैसला मत करने बैठो : प्रेम ही मार्ग है : सर्वोदय

चि०—, तेरा पत्र मिला। तू ने लिफाफा सजाने का प्रयत्न किया और उसे बिगाड़ दिया। अनुपयोगी शोभा के सम्बन्ध में ऐसा ही समझना चाहिए। सरदार लिफाफों पर जो सजावट करते हैं वह सजावट के लिए नहीं होती। उपयोग से जो सजावट उत्पन्न होती है शोभित होती है। लिखे हुए लिफाफा का फिर से उपयोग करना हो तो लिखा हुआ नष्ट करना चाहिए। इसलिए लिखी हुई जगह पर नाप से कटी हुई कागज़ की पट्टियां—उन्होंने चिपकाई, वह उन्हें अच्छी मालूम हुईं। किन्तु उन्हें उससे सन्तोष न हुआ।

तो अब उधर से आने वालों के कवर उलट देते हैं, उससे उन्हें छोटी-छोटी पट्टियाँ चिपकानी नहीं पड़तीं और कवर नया सा दिखाई देता है। ध्यान से देखो तब मालूम हो। तेरी फुन्दनेदार पट्टियाँ आधी खिसक आई थीं। उससे बहुत ही खराब दिखाई देती थीं। उनका उपयोग तो कुछ भी नहीं था। उसमें की हुई मेहनत व्यर्थ हुई और समय तथा उतना कागज खराब हुआ। जनता का उतना नुकसान हुआ। सारांश यह कि बिना समझे किसी का अनुकरण न करना चाहिए। शृङ्गार के लिए किया हुआ शृङ्गार शृङ्गार नहीं है। युरोप में बड़े-बड़े मन्दिर हैं, उनके बारे में कहा जाता है कि उनके सभी शृङ्गारों के पीछे उपयोग अवश्य रहता है। यह सच हो या न हो। पर मैंने बताया, उस नियम के बारे में सन्देह को स्थान नहीं।

इस बार के तेरे पत्र में सुपरिंटेंडेंट की टीका छोड़ कर दूसरा बहुत थोड़ा है। मुझे मालूम होता है कि वह टीका व्यर्थ है। अब उसके योग्य होने के बारे में विचार करने का कोई कारण ही नहीं है। Judge not, lest Ye be judged. यह वाक्य हृदय पर अंकित करने लायक है। इसी अर्थ का गुजराती वाक्य याद नहीं आता। मराठी में हो तो भेज।

उर्दू पुस्तकों की सूची चाहिए ही। शिबली की पुस्तक भेज ही दे। और खलीफा की जीवनी भी।

... तू मरना पसन्द करेगी किन्तु मछली न खायेगी, यह मुझे प्रिय है। इसका यह भी अर्थ है न कि तू काड लिवर आयल भी नहीं लेगी? मेरी क्या इच्छा है इसका विचार नहीं करना। तेरी मानसिक स्थिति समझने के लिए मैंने यह प्रश्न पूछा है।

तेरे भोजन में दूध या दही और घी बढ़ाना चाहता हूँ। हरे शाक के बजाय कभी-कभी पका हुआ फल होना ही चाहिए। (आज कल वहाँ) पपीता पकता नहीं क्या? या अच्छे नहीं मिलते? किसी तरह की पालक (आश्रम में) नहीं होती? तू खुद थोड़े से टमाटर क्यों नहीं लगाती? लेटीस भी बहुत शीघ्र उत्पन्न होते हैं। कच्चा पपीता बहुत न खाना चाहिए

और हमेशा भी न खाना चाहिए। खर्च की चिन्ता न करते हुए, इतना परिवर्तन अवश्य करले।

विद्यावती की मूर्खता प्रेम से जायगी। ० ० ० का प्रश्न कुछ कठिन है। किन्तु उसका भी उपाय एक ही है। उस पर तीन शक्तियाँ काम कर रही हैं। तब यदि वे तीनों एक ही दिशा की ओर बहती न होंगी तो कठिन है। तीनों शक्तियाँ उसके पिता, माँ और तू अथवा जिसके ऊपर उसकी देखरेख हो वह। इस परिस्थिति से भी मुक्त होना और रास्ता निकालना प्रेम का ही काम है। वह तुझमें जितना विशाल होगा उतनी तेरी शक्ति ऐसे लड़कों को सुधारने में सहायक होगी।

आश्रम की बड़ी लड़कियों के बारे में अपने में उदारता ले आओ। वे झूठी बनकर घर में बैठी नहीं रहतीं; असहाय हैं, इसलिए रहती हैं। उनकी असहायता की तौल तुझसे मुझसे करते न बनेगी। यह तौल लड़कियाँ ही करें। वह झूठा भी हो सकता है। उनके मन से वह झूठा न हो बस। ० ० पर दो लड़कों का बोझ है। अब उससे कितने काम की आशा की जा सकती है? बच्चों का पालन कैसे करना, इसकी कल्पना भी नहीं और वह इतने में माँ बन बैठी है! इन सबका न्याय हम *बावनवाली तराजू से न करें। और तुझे अनुभव से दिखाई देगा कि जैसे उदारता बढ़ती जायगी। वैसे लोगों से काम करा लेने की शक्ति बढ़ती जायगी। सच झूठ राम जाने। किन्तु ऐसा कहते हैं कि मुझे आदमियों से बहुतेरा काम करा लेना आता है। यह सच हो तो उसका कारण यही है कि उनके सम्बन्ध में मुझे चोरी का सन्देह ही नहीं होता, जो जो देता है उससे मुझे सन्तोष होता है किन्तु मैंने और माँगा तो वह और देता है। बहुत से ऐसा भी कहने वाले हैं कि मुझे लोग जितना ठगते हैं उतना शायद ही किसी को ठगते होंगे। यह जाँच सच ठहरी तो भी मुझे पश्चात्ताप न होगा। मैंने अपने जीवन में

---

*तात्पर्य 'निष्ठुरतापूर्वक' न करने से है। हिन्दी मुहाविरा 'बावन तोला पाव रत्ती' है।

किसी को नहीं ठगा, इतना भी प्रमाणपत्र मुझे मिला तो बस है। और किसी ने मुझे नहीं दिया तो मैं खुद का वह देता ही हूँ।

मुझे असत्य सब से अधिक बुरा मालूम होता है। 'अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक कल्याण' * और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' ये नियम मुझे मान्य नहीं हैं। 'सब का कल्याण—सर्वोदय और 'निर्बल प्रथम' यह मनुष्यों के लिए नियम हैं। हम दो पैर के आदमी कहलाते हैं। किन्तु चार पैर वाले पशुओं का स्वभाव अब तक छोड़ नहीं सके हैं। उसे छोड़ने में ही धर्म है।

ता०—६—७—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

[पत्र—४०]

अनासक्त और अपशकुन : रोग की स्वपरीक्षा

चि०—, तेरा पत्र मिला। मैं अब कितने पत्र लिख पाऊँगा, यह कहा नहीं जा सकता। पत्रों पर तलवार लटक रही है। पत्र यहाँ से निकलते समय जो देर हो रही है वह कायम रही तो लिखने में मुझे कोई अर्थ नहीं मालूम होता। आने वाले पत्र अब मुझे नियमित दिये जाते हैं। जाने वाले पत्रों के बारे में अबतक पत्र-व्यवहार चल रहा है। पत्र न पहुँचे तो समझना मेरी गाड़ी रुकी हुई है। किन्तु उससे घबड़ाने या उदास होने का कारण नहीं है। लिखने देना या न देना सरकार के हाथ में है। 'क़ैदी को हक़ है', कहकर पत्र लिखने देने की माँग करना मुझसे न होगा। इतने दिन लिखने को मिले इसलिए कुछ हक पैदा नहीं होता। और जिस वस्तु के बारे में अपना कोई हक नहीं वह अपने हाथ से गई तो उसका दुःख मानने का क्या कारण है।

---

* Greatest good of the greatest number.

तेरे जन्म दिन के बारे में आशीर्वाद लिखा हुआ पत्र तो अब तुझे मिला ही। देर से मिला तो क्या? कदाचित् उससे उसकी कीमत बढ़ी। न मिलता तो उसका अपशकुन मानने का कारण नहीं था। मुझे तेरा पत्र मिलने पर मै आशीर्वाद न भेजूँगा, ऐसा हो नही सकता। दैवी कारण से न मिला अथवा देर से मिला तो अपशकुन कैसे हुआ? और सच पूछा जाय तो अनासक्त को अपशकुन वगैरा कुछ नही है। अतः हमारा नया साल खराब जायगा, ऐसा जरा भी मन मानो। हमने कुछ बुरा सोचा, कहा अथवा किया तभी साल बुरा जायगा और यह तो अपने हाथ की बात है।

गले में की गाँठें (टॉसिल) काटनी चाहिएँ, ऐसी डाक्टरों की सलाह हो तो कटवा लो .. . । इसमें देर नहीं लगती। उसमें कोई डर है यह भी मैने नहीं सुना। तेरा शरीर बिल्कुल रोग-रहित होना चाहिए। मैं समझता हूँ कि अपने शरीर की जानकारी अधिक से अधिक खुद को ही होती है।

इसी से दिखाई देता है कि रोगी यदि अपने शरीर को पहचान न सका तो उसे डाक्टर को ठीक जवाब देते न बनेगा। 'सर में दर्द है' इतना कहने से डाक्टर क्या बतायेगा। सर क्यों दर्द करता है, यह रोगी की समझ में आना चाहिए। यही बात बहुत सी बातों में हमें समझने लायक है। यही बात चिकित्सा के सम्बन्ध में। अमुक चिकित्सा का क्या परिणाम हुआ, यह डाक्टर अपने आप नही समझता उसे रोगी पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। किन्तु सभी रोगियों को चिकित्सा का क्या परिणाम हुआ यह पहिचानने नही आता। आहार शरीर की रोज की चिकित्सा है। उसका परिणाम खाने वाले को ही मालूम हो सकता है। अतः जिसे हवा पानी और अन्न का परिणाम समझ में आया वह अपने शरीर पर जितना अधिकार रख सकता है उतना डाक्टर कभी नहीं रख सकते। अतः मै समझता हूँ कि हम सबको शरीर के बारे में सामान्य ज्ञान प्राप्त कर ही लेना चाहिए। उसी तरह हवा, पानी और आहार के बारे में भी इतना ज्ञान प्राप्त करने लायक साहित्य अपने पास है ही। वह सब पढ़ने की आवश्यकता नहीं।

उसमें से थोड़ा समझ लिया कि काम चल जायगा। ० ० ० वे खुद के प्रयत्नों से अपना शरीर अच्छा बना लिया है। मेरे बारे में मैं मानता हूँ कि अपने काम लायक ज्ञान यदि मैंने प्राप्त न किया होता तो मैं कभी का समाप्त हो गया होता। मेरा टूटा-फूटा शरीर भी मेरे सावधानी के साथ रहने के कारण ही बच सका है। मुझे विश्वास है कि उसमें डाक्टरों का बहुत थोड़ा हाथ है।

ता०—२४—७—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—४१]

विगत महायुद्ध : अनासक्त प्रार्थना

चि०—, तेरा भाग्य ही फूटा कहना चाहिए क्या? मैंने तो तेरे जन्म दिन का आशीर्वाद लौटती डाक से ही भेजा था। किन्तु मेरा पत्र बीच में ही लटकता रह गया। शायद कल रवाना हुआ हो तो नहीं बता सकता, किन्तु पत्र में लिखे आशीर्वाद से क्या होगा? हृदय का आशीर्वाद हो तो बस है और वह तो था ही। हृदय किस प्रकार काम करता है, यह हमें समझ में भी नहीं आता। और सच वही है। बाकी सब झूठ......।

नई बहिनें आई हैं। उनमें से जो लिख सकती हों उन्हें मुझे पत्र लिखने को कहो। ० ० को ठीक पहिचान लो; उसकी कहानी दुःखदायी है।

प्रेसिडेण्ट विल्सन के जीवन से मेरा परिचय नहीं। सुना है, यों तो वह भला आदमी था और उसके हेतु अच्छे थे।

गत युद्ध के कारण लाभ हुआ तो नहीं प्रतीत होता। भीति का बल ढीला पड़ गया है। द्वेष बढ़ गया है। लड़ने की वृत्ति कम नहीं हुई; लोभ बढ़ा है।

किसी मनुष्य अथवा वस्तु को लक्ष्य कर प्रार्थना हो सकती है। उसका परिणाम भी हो सकता है। किन्तु इस प्रकार लक्ष्य न करके की गई प्रार्थना आत्मा तथा संसार के लिए अधिक कल्याणकर होने की सम्भावना है।

प्रार्थना का संस्कार स्वयं अपने पर होता है। अतः उससे अन्तरात्मा अधिक जागृत होती है। और जैसे-जैसे जागृति बढ़ती जायगी वैसे-वैसे उसके संस्कार का विस्तार बढ़ता जाता है। वह हृदय का विषय है। मुँह से प्रार्थना आदि की क्रियाएँ हृदय को जागृत करने के लिए हैं। व्यापक शक्ति जो बाहर है वही अन्दर है और उतनी ही व्यापक है। उसे शरीर का अन्तराय नहीं। अन्तराय हम उत्पन्न करते हैं। प्रार्थना के योग से वह अन्तराय दूर हो जाता है। प्रार्थना के द्वारा इच्छित फल प्राप्त होता है या नहीं, यह हमें समझ में नहीं आता। मैंने ० ० ० की मुक्ति के लिए प्रार्थना की और वह दुःख से मुक्त हो गई, इससे वह मेरी प्रार्थना का ही फल है, ऐसा मुझे न मान लेना चाहिए। वह प्रार्थना निष्फल नहीं होती किन्तु क्या फल देती है यह हमें समझ में नहीं आता। और हमारा चाहा हुआ फल ही प्राप्त हुआ तो वह अच्छा ही है ऐसा मानना ठीक नहीं। इस जगह भी गीता बोध का अमल करना है। प्रार्थना अनासक्त होनी चाहिए। किसी एक के सम्बन्ध में प्रार्थना करने पर भी अनासक्त कहा जा सकता है। किसी की मुक्ति हमें इष्ट मालूम हो तो उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए। किन्तु मुक्ति प्राप्त हो या न हो उस सम्बन्ध में निश्चिन्त रहना चाहिए। फल विपरीत हो तो भी प्राथना विफल हुई, यह न समझना चाहिए। क्या इससे अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता है?

उर्दू पुस्तकों की सूची मैंने माँगी है, यह ध्यान में रखो। अब यह पत्र तुझे कब मिलेगा और तेरा उत्तर कब आयेगा, यह कुछ निश्चित नहीं। अनिश्चितता में निश्चितता रखने को सीखना, यही अपना काम है।

ता०—१७—७—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

[पत्र—४२]

क्रोध का परिणाम : व्यक्ति-पूजा नहीं गुण-पूजा : आश्रम : शुद्ध प्रेम की कसौटी : संयम बनाम स्वच्छन्दता : 'दूसरों का न्याय न करो' : अहिंसा :

चि०—, तेरा पत्र मिला। तेरी मूर्खता का तो अन्त ही नहीं है। क्रोध में आती है तब अपने को भूल ही जाती है। जिस पत्र में क्रोध को जीतने के व्रत का उल्लेख करती है उसी में क्रोध करती है और वह भी अकारण। मेरे मीठे दोषारोप का कारण ही तेरी समझ में न आया। जो फुचड़ेदार टुकड़ा तू ने कवर पर चिपकाया था उसमें शृंगार या कला नहीं थी, यह मेरी शिकायत थी। कला के लिए जो अधिक समय देता है मैं उसे दोष न दूँगा। उसमें तो कला थी ही नहीं। कवर पर ऐसी पट्टियाँ चिपकाने में काहे की कला है। और तू ने उन्हें चिपकाया भी इस तरह कि आधी निकल गई थीं। अतः तेरा क्रोध अविचारी था। मुझे उससे हँसी आई। पास होता तो थप्पड़ ही दिया होता। किन्तु तू लुढ़क पड़ी उसका क्या? उसमें इतना समय गँवाया। करना नहीं चाहिए, ऐसा तर्क किया और अपना शरीर खराब किया। क्योंकि क्रोध का परिणाम शरीर पर होता है, यह भौतिक वैज्ञानिकों ने प्रयोग कर खोज निकाला है। हम लोग भी वैसा ही समझते हैं। तेरा व्रत टूटा सो अलग। फिर ऐसा क्रोध मत करना। और मेरी आलोचना मीठी आलोचना थी। उसे समझने लायक अक्ल भी तू खो बैठी।

पत्रों को तो गाजर की पुंगी* समझना चाहिए। अतः पत्र न मिलने पर दुखी न होना चाहिए। वहां से पत्र लिखते ही जाना। रोक हुई तो मैं लिखूँगा। इतनी भी खबर मैं न दे सका तो भी लिखा हुआ व्यर्थ न जायगा।

नये फूलों को मेरा प्रणाम कहो। कभी तो उनमें, उनके बीच होने की मुझे आशा है, ऐसा कहकर उन्हें धीरज दे।

तू बड़ी अभिमानिनी है। फूलों के आसपास थोड़े से टमाटर और साग

---

* गाजर का बाजा। (तात्पर्य बजा तो बजा नहीं खा लिया—दोनों प्रकार लाभ)।

लगाया तो वह बारह मास मिलेगा और शरीर को लाभ होगा। शरीर तेरा नहीं। तुझे सौंपी गई ईश्वर की वस्तु है। अतः उसकी रक्षा के लिए तुझे अवश्य समय देना चाहिए। ऐसे पेड़ों को बहुत सा समय नहीं लगता और उसे ज़मीन भी थोड़ी लगती है। मेरे एक अँग्रेज मित्र—जो दक्षिण अफ्रिका में मेरे साथ रहते थे—ने बिना परिश्रम के थोड़े ही दिनों में कच्ची खाई जाने वाली 'क्रेस' नाम की तरकारी तैयार कर ली थी।

लड़कियों की बीमारी के बारे में मैंने तुझे लिखा ही है। कोठरी में घुसकर जाँच कर। ० ० बारे में मुझे डर था ही। किन्तु उसने तुझे सब कुछ बता दिया है। तो अब उसे जीतले। अब तेरी कठिनाइयों के बारे में:—

(१) व्यक्तिपूजा के बजाय गुण-पूजा करना उचित है। व्यक्ति खोटा हो सकता है, और उसे विनाश है ही; गुणों का नहीं है।

(२) आश्रम की चालक मण्डली में बहुत से लोग अच्छे न लगते हों तो उन्हें सहन करना सीखने के लिए यह सुवर्ण अवसर है। निर्दोष कोई भी नहीं है। और अपनी तरह ही सबको मानने का निश्चय किया कि अच्छे लगने न लगने का प्रश्न ही हट जाता है।

(३) आश्रम के तत्व स्वीकार हों और उसके बाह्य स्वरूप के बारे में मतभेद हों तो उसकी फिकर करने की जरूरत नहीं। अपना काम 'मम' से (तत्व से) है। टपटप से (बाह्य रूप से) नहीं।

(४) तुझे अपने स्वभाव के दोष निकालने के लिए तो आश्रम में रहना धर्म है।

(५) अपने आदर्श तुझे आश्रम में पूर्ण करते न बनेंगे तो वह दोष तेरा है। आश्रम में तो तुझे पूरी स्वतन्त्रता है।

(६) तेरे स्नेहीजनों का खिंचाव तुझे आश्रम के बाहर क्यों ले जाय? (उससे तो) अपने प्रेम को उन्हें आवश्यकतानुसार यहाँ लाना चाहिए। प्रेम को भौतिक सहवास की आवश्यकता ही न होनी चाहिए। और हो तो वह प्रेम क्षणिक ही कहना चाहिए। शुद्ध प्रेम की एक कसौटी तो दूसरे के वियोग में—दूसरे की मृत्यु के उपरान्त होती है।

किन्तु यह सब बुद्धिवाद हुआ। तेरा हृदय जहाँ हो वहीं तू रहेगी। आश्रम को यदि तेरा हृदय रखते न बनता हो तो मैं भी क्या करूँगा और तू भी क्या करेगी।

मेरे सूत की साड़ियाँ बुना लेनी ही चाहिएँ। मैंने सूत के विषय में अपने जो विचार प्रदर्शित किये उसके पहले का वह सूत है। सच में तो वह 'बा' के लिए ही रखा है। तो उसका त्याग 'बा' को करना है, मुझे करना नहीं है। 'बा' बहुत मोटी साड़ियाँ पहन ही नहीं सकती अतः आश्रम की ओर से भी सामान्यतः पतली साड़ियाँ ही मिलती हैं। इस रीति से भी मेरे सूत की साड़ी 'बा' भले ही पहने। किन्तु इसके पश्चात् सूत के बारे में कड़ाई करनी चाहिए। किन्तु वहाँ भी मैं 'बा' पर जबरदस्ती न करूँगा। 'बा' अपनी इच्छा से उसका त्याग करे और उसके हिस्से में जो आवें उस पर उसे सन्तुष्ट रहना चाहिए यह मेरी इच्छा है। किन्तु यह भविष्य की बात हुई। अभी तो मेरा नया सूत सब यहीं है। चाहे कुछ हो, मेरा सूत पड़ा न रहना चाहिए। किसी का भी पड़ा न रहना चाहिए। बुनने लायक सूत इकट्ठा हुआ कि उसका ताना होना चाहिए।

० ० ० कातती होगी, ऐसी मेरी समझ है। किन्तु तूने लिखा वह ठीक है। बहुत-सी स्त्रियाँ कातना छोड़कर भरने का काम पसन्द करेंगी। जैसा खाने में वैसा काम में। रोटी छोड़कर पकौड़ी की ओर मन दौड़ेगा। रोटी पर स्थिर रहने में संयम है, त्याग है। पकौड़ी की ओर जाने में स्वच्छन्दता है। उसी प्रकार कातने पर स्थिर रहने में संयम है। दूसरी ओर जाने में (अपेक्षाकृत) स्वच्छन्दता है।

'किसी का न्याय मत करो। अन्यथा दूसरे तुम्हारा न्याय करेंगे।' [Judge not, lest ye be judged] इस पर तेरी आलोचना तुझे भली नहीं मालूम होती। उसका अर्थ ही तेरी समझ में नहीं आया। तेरी आलोचना में बड़ा अहंकार है। अन्यथा 'दूसरे लोग तुम्हारा न्याय करेंगे' का अर्थ यह है कि हम इस तरह के न्यायपात्र दोष में न पड़ें। संसार के सामने उद्धत न बनें। 'संसार को जो कहना हो या करना हो वह वह भले

ही करें, ऐसे विचार या ऐसे शब्द हम कैसे निकाल सकते हैं। संसार के आगे हम क्षुद्र हैं। मतलब यही है कि हम सत्य मार्ग पर हों तो भी संसार को दण्ड देने का भार नहीं लेते। उसका न्याय नहीं करते। बल्कि संसार-द्वारा दी हुई सजा और न्याय चुपचाप सहन कर लेते हैं। इसी का नाम नम्रता या अहिंसा है। तेरा लेख व्यंग्य से या क्रोध से लिखा गया हो तो भी तू फिर ऐसा न लिखना, यह मेरी इच्छा है। मुझ पर तूने जो क्रोध निकाला है उसकी चिन्ता नहीं। वह मैं हँसकर दूर कर सकूँगा, किन्तु ये शब्द मुझे गड़ते हैं। तेरी लेखनी से ऐसे वाक्य न निकलें अर्थात् ऐसे विचार भी मन में न आवें। विचार आही गया और इसीलिए वह मेरे सामने रखा गया, यह ठीक हुआ। मेरे सामने रक्खा गया इसीलिए तो मैं उसमें सुधार कर सकता हूँ। ये बातें इसलिए नहीं लिखीं कि तू अपने विचार मुझ से छिपा। तू पागल, उद्धत, नम्र जैसी हो वैसी मैं देखना चाहता हूँ। किन्तु मेरी माँग यह तो अवश्य है कि अपने पत्र के विचारों को तू मन में भी जगह मत दे।

ज़ोर से मालिश करने के लिए शारीरिक बल की आवश्यकता नहीं होती, युक्ति की आवश्यकता होती है......।

अब तू जो पढ़ती है वही लिखती है, ऐसा मेरा एक समय ख़याल था। किन्तु आज वैसा नहीं। मेल्थुस के कुछ लेख लोगों की समझ में नहीं आये और कुछ गलतियों से भरे हैं। जो नियम मनुष्येतर प्राणियों पर लागू होता है, वह मनुष्य पर नहीं लागू होता। मनुष्येतर प्राणी और जीवों को मारकर खाते हैं और जीते हैं, मनुष्य उससे बाहर निकलने के लिए फड़फड़ाता है। इसमें उसकी अहिंसा है। देह है तब तक वह पूर्ण अहिंसा तक नहीं पहुँच सकता। किन्तु भावना रूप से उसने यह अहिंसा बढ़ाई तो वह कम से कम हिंसा के द्वारा अपना (जीवन) निर्वाह करेगा। खुद मरकर औरों को जीवित रहने देने की तैयारी में ही मनुष्य की विशेषता है। जैसे मनुष्य बढ़ता है वैसे उसका आहार भी बढ़ता है। अभी उसमें बढ़ने की शक्ति है। डार्विन के संशोधन के पश्चात् दूसरे बहुत से संशोधन हुए हैं। जो पुस्तक

तू पढ़ रही है, वह पुरानी मालूम होती है। पुरानी हो या नई हो, 'अधिक से अधिक संख्या का कल्याण' अथवा 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' ये नियम गलत हैं। अहिंसा सबका कल्याण चाहती है। ईश्वर के घर सभी के कल्याण का न्याय होगा। वह कैसे दिया जाता है और ऐसे न्याय में मनुष्य का कर्तव्य क्या है, यह खोजना अपना काम है। इस नीति के विरुद्ध नीति सामने रखना अपना काम नहीं। किन्तु यह विषय बड़ा है। मैंने थोड़े में तुझे बता दिया है। अधिक चर्चा करनी हो तो प्रश्न पूछ।

ता०—३०—७—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

[पत्र—४२]

शरीर पर मन का प्रभाव : अन्तर्नाद : नाम-जप की महिमा : विद्याध्ययन का लक्ष्य : कला

चि०—, तेरा एक तारीख का पत्र मिला। छात्रालय में होने वाली भर्ती से तू घबरा न गई होगी। लड़कियाँ अच्छी होंगी तो कोई तकलीफ न होगी। और यदि हम अनासक्ति का पाठ ठीक पढ़े होंगे तो भी कोई तकलीफ न मालूम होगी। तेरे शरीर-स्वास्थ्य के लिए औरों को केवल बाह्य उपाय ही सुझाना आयगा। तेरे अन्तर का तुझी को अधिक मालूम हो सकता है। मनोविज्ञान जानने वालों पर मेरा अधिक विश्वास नहीं। कितना भी सीखा हुआ पण्डित क्यों न हो वह मनुष्य का मन कहाँ तक जान सकेगा। अतः तेरी प्रकृति से मन का जो सम्बन्ध होगा वह तुझे ही समझ लेना पड़ेगा और आवश्यक उपाय करने पड़ेंगे। किन्तु इसी पत्र में तूने ऐसा भी लिखा है कि छोटे-बड़े काम का और नींद का या जागरण का परिणाम शरीर पर हुए बिना नहीं रहता। सच तो यह है कि अन्तर और बाह्य दोनों का शरीर-स्वास्थ्य से सम्बन्ध है। बाह्य साधनों के विषय में बेफिक्र रहकर कोई भी शरीर को स्वस्थ नहीं रख सके हैं। अतः नींद, विश्राम और काम के बारे में

० ० ० ० बतायें वह सुनो। मन के बारे में तू खोज कर। चाहे जो कर, शरीर लोहे की तरह बना......।

अन्तर्नाद का वर्णन किया नहीं जा सकता। किन्तु कई बार हमें ऐसा मालूम होने लगता है कि अन्तर से अमुक प्रेरणा हुई है। मैंने जब वह नाद पहिचानना सीखा, वह मेरा प्रार्थनाकाल कहा जा सकता है। अर्थात् सामान्यत: १९०६ के लगभग। तू पूछती है इसलिए स्मरण कर लिख रहा हूँ। और 'अरे, आज कुछ नया ही अनुभव आया' ऐसा भान मेरे जीवन में नहीं हुआ। जैसे हमारे केश बिना मालूम हुए बढ़ते हैं, वैसे ही मेरा आध्यात्मिक जीवन बढ़ा है, यह मेरा विचार है।

नाम-जप के द्वारा पाप-हरण इस प्रकार होता है। शुद्ध भाव से नाम जपने वालों में श्रद्धा होती ही है। नाम-जप के द्वारा पापहरण होगा ही इस निश्चय से वह प्रारम्भ करता है। पापहरण अर्थात् आत्म-शुद्धि। श्रद्धा के साथ नाम जपने वाला थक ही नहीं सकता। अर्थात् जो जीभ से होता है वह अन्त में हृदय में उतरता है। और उससे शुद्धि होती है। यह अनुभव निरपवाद है। मानसशास्त्रियों का भी यह विचार है कि मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा होता है। रामनाम इस नियम का ही अनुसरण करता है। नाम-जप पर मेरी श्रद्धा अटूट है। नामजप की जिसने खोज की, वह अनुभवी था और उसकी यह खोज अत्यन्त महत्व की है, यह मेरा दृढ़ विचार है। निरक्षर की भी शुद्धि का द्वार खुला रहना चाहिए। यह नाम-जप से होता है। (देखो गीता ९-२२, १०-१७)। माला इत्यादि एकाग्र होने का साधन है।

विद्याध्ययन सेवा के लिए ही होना चाहिए। किन्तु सेवा में अपूर्व आनन्द है। अतः विद्या आनन्द के लिए है, ऐसा कहा जा सकता है। किन्तु कोई आज तक सेवा के बिना केवल साहित्य-विलास से अखण्ड आनन्द का अनुभव कर सका है, ऐसा सुनने में नहीं आया।

कला का किसी देश के पास, किसी व्यक्ति के पास ठेका नहीं है। जिसमें छिपाने लायक कुछ है वह कला नहीं है।

प्रत्येक देश को अपने उद्योग-धन्धे की रक्षा करने का अधिकार है और यह उसका धर्म है।

निराश्रय को आश्रय देना अहिंसक का धर्म है। निराश्रय 'कौन' यह तो उस-उस परिस्थिति को देखकर ही बताया जा सकता है।

जो बाहर से खराब दिखाई देता है वह अन्दर खराब होना ही चाहिए, ऐसा नियम नहीं है। उर्दू पुस्तकें बाहर से खराब दिखाई देती हैं इससे उन्हें प्रकाशित करने वालों की गरीबी दिखाई देती है। किन्तु उसमें लेख अच्छे नहीं, यह कैसे हो सकता है। कितनी ही में तो हैं ही। किन्तु यह लिखने में मिठास का प्रश्न क्यों आये ? उर्दू का अध्ययन करना कर्तव्य है, अर्थात् उसमें मिठास होगी ही। क्योंकि कर्तव्य में मिठास है। तू कभी-कभी उर्दू सीखने की तकलीफ़ उठायेगी तो तुझे भी अलग मिठास मालूम होगी।

ता०—८—७—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

[पत्र—४४]

व्यक्ति-पूजा बनाम गुण-पूजा : केला : मेरे विरोधी : सम्मान की नहीं, काम की भूख : नम्रता

चि०—, नीचे की पुस्तकें परचुरे शास्त्री के लिए चाहिएँ। उनमें से जो हों भेजो; न होंगी उन्हें दूसरी जगह से मँगाऊँगा। जरा जल्दी भेजोगी तो अच्छा। ....परचुरे शास्त्री आश्रम में थे। बड़े विद्वान हैं। आजकल जेल में हैं। उन्हें महारोग—(कुष्ट) हो गया है। इसीलिए पुस्तकें देने की जल्दी है। वे रोज़ कातते हैं। उनकी पत्नी भी बीमार पड़ी हुई हैं। वह बाहर है। पुस्तकें :—(१) Imitation of Christ (२) Works of Swami Vivekanand (जो हों) (३) Works of Sister Nivedita (जो हों) (४) Essays of Tolstoy (५) व्याकरण महाभाष्य

(६) यजुर्वेद भाष्य (७) Dispensation of Keshav Chandra Sen.

तेरा पत्र मिला। मन में आवे तभी मुझे रसीले पत्र लिखना आता है, ऐसा तू समझती है ? अब याद रख कि वैसा कुछ नहीं है। कौन-सा पत्र रसीला और कौन-सा सूखा, यह भी मेरी समझ में नहीं आता और जो तू रसीला समझती है वह वस्तुतः रसीला है, यह कौन कह सकता है ? मालूम होता है कि रसिकता नापने का अलग गज ईश्वर ने अपनी सन्दूक में ताला लगाकर बंद कर दिया है। अतः रसिकता की नाप प्रत्येक के पास खुद की ही होनी चाहिए। तेरी नाप पूरी करने का मैं प्रयत्न करने लगा तो मेरा दिवाला ही निकलेगा। उसी में मेरा समय जायगा। यह पत्र कदाचित् अरसिक मालूम होगा, ऐसा सन्देह हुआ कि दूसरा, फिर तीसरा इस प्रकार लिखता ही बैठूँ ? और तुझे जैसे रसीले पत्र लिखने चाहिएँ, वैसे ही दूसरों को भी तो। अपना फिर क्या रहा ? ठन ठन् ! ! ! उनकी अपेक्षा मेरा सीधा रास्ता है। रसिक अरसिक इसका विचार ही न करते हुए जो मन में आवे वह, आये वैसी भाषा में, लिख फेंकना। किन्तु तू ठहरी मूर्ख और उस पर अभिमानी। इतनी सीधी बात तेरी समझ में थोड़े ही आयेगी। और अब तो मैं देखता हूँ कि तू सर्वज्ञ होने का दावा कर रही है। जो समझदारी की बात लिखी वह सब तुझे मालूम ही है, ऐसा दिखाई देता है। किन्तु ज़रा रुक। जो 'मैं सब समझता हूँ' ऐसा समझते हैं, किन्तु उसपर अमल नहीं कर सकते उनकी समझ में कुछ नहीं आता, और आता है तो उन्हें मालूम नहीं होता। अतः मेरे विचार से तो जब तक तू उलटा - पलटा लिखेगी, क्रोध करेगी, अभिमान करेगी तब तक मूर्ख ही रहेगी। इसका अर्थ यह नहीं कि अभिमान, क्रोध और पागलपन छिपाकर लिखना चाहिए। तेरे पत्रों का मूल्य तू जैसी है वैसी दिखाई देने में है। बावली रही तो चल जायगा। किन्तु क्रोध निकाल ही देना चाहिए और अभिमान थोड़ा कम करना चाहिए। एकदम निकाल देना लगभग असम्भव है। नारदमुनि का उदाहरण देती है किन्तु उनके वचनों का रहस्य तुझे कहाँ मालूम है ?

उनकी तरह व्यक्ति-पूजा ज़रूर करना। वह करना ठीक है। जैसे वैकुण्ठ-भगवान् ऐतिहासिक वैसे ही उनके कृष्ण। नारद मुनि के भगवान् उनके कल्पना-मन्दिर में विराजमान थे। वे नारद मुनि आज भी हैं और उनका कृष्ण भी है। क्योंकि वे दोनों अपनी कल्पना में ही हैं। मेरे विचारों से इतिहास की अपेक्षा कल्पना का स्थान ऊँचा है। तुलसीदास ने कहा कि राम की अपेक्षा नाम बढ़कर है, इसका यही अर्थ हो सकता है। तू व्यक्ति-पूजा के चक्कर में पड़ी है, इसीलिए मुझे चिन्तित कर रही है न? आश्रम के बारे में तू मुझे निर्भय नहीं कर पाती। ० ० ० कर पाया है। ऐसे दूसरे उदाहरण भी दिखाये जा सकेंगे। वे भी व्यक्तिपूजक हैं। कौन नहीं है? किन्तु अन्त में वे व्यक्ति के पार जाकर उसके गुणों के अर्थात् कृति के ही पुजारी बनते हैं। इस अमूल्य बात को भूलकर हम लोगों ने अपनी मूर्खता से स्त्रियों को सती होना सिखाया, यह व्यक्तिपूजा की पराकाष्ठा है!! किन्तु पत्नी का धर्म तो यह है कि वह पति का कार्य अपने में अमर करे। पति पत्नी में से विकार तथा नर-नारी-जाति-भेद निकाल देने पर वह आदर्श समस्त संसार पर चाहे जिस परिस्थिति में लागू किया जा सकता है। इसी का अर्थ यह है कि प्रेम ईश्वर में जा मिलता है। किन्तु अब यह विषय यहीं छोड़ देता हूँ।

तू ० ० ० के आने की खबर सुनकर इतनी घबराई क्यों? उसे भी ठिकाने पर लाने की हिम्मत रख; उतना विश्वास रख। प्रेम सब कुछ जीतता है, यह अमर वाक्य हृदय में जमने दे। कोई भी आवे, प्रसन्न रहना ही अपना धर्म है। अपने से हो उतनी सेवा कर मुक्त हो जाना है न? तू ऐसा विचार क्यों नहीं करती कि बाकी के लड़के सुधरे होंगे तो ० ० ० सुधरेगा ही। ऐसा भी सम्भव है कि वह अब समझदार हो गया होगा। मुझे उससे बहुत आशा है।

लड़कियों की सेवा करते-करते तुझे पानी हो जाना चाहिए। लड़कियाँ यदि किसी से खुलकर बातें न करेंगी तो वे सब बीमार ही पड़ जाँयगी। ० ० ० को लिखा हुआ मेरा पत्र पढ़ और यदि वह उस पत्र को देने के

लिए तैयार हो तो समझदार लड़कियों को पढ़कर सुना दे।

केले में वायु उत्पन्न करने का गुण तो मैंने कभी अनुभव नहीं किया। मेरे इतने केले शायद ही किसी ने खाये होंगे। बहुत साल तक वह मेरा मुख्य आहार था। दूध नहीं, रोटी नहीं, केवल केला और ओलिव आयल (जैतून का तेल) उसी तरह मूँगफली और नीबू किन्तु वायु का नाम नहीं। बहुत सालों के बाद फिर आजकल खा रहा हूँ। किन्तु कोई बुरा परिणाम नहीं दिखाई देता। उसका एक नियम ही है। एक तो केला पकाना चाहिए या वे एकदम पके होने चाहिएँ। कच्चे केले में केवल स्टार्च होता है। स्टार्च बिना पकाये न खाना चाहिए यह मैंने ० ० ० ० के प्रयोग में देखा। अतः केला मुलायम न लगा, पका न मालूम हुआ तब तक न खाना चाहिए। दो-तीन दिन वैसे ही रखने से वे पक जाते हैं। खाने की जल्दी हो तो सेंकना या उबालना चाहिए।

मेरा विरोध करने वाले पहले भी थे और आज भी हैं। तो भी मुझे उनके बारे में क्रोध नहीं है। स्वप्न में भी मैंने उनका बुरा नहीं सोचा। अतः बहुत से विरोधी मेरे मित्र बन गये हैं। किसी का भी विरोध आज तक मेरे सामने टिक न सका। तीन बार तो विरोध करने वालों ने मुझ पर हमला भी किया तो भी मैं अब तक बचा हूँ। इसका अर्थ यह नहीं है कि विरोधियों को ईप्सित सफलता कभी मिलेगी ही नहीं। मिले या न मिले, मुझे उससे मतलब नहीं। मेरा धर्म उनका भी हित सोचना और समय पड़ने पर उनकी भी सेवा करना है। इस सिद्धान्त का मैंने यथाशक्ति आचरण किया है। वह मेरा स्वभाव ही है, ऐसा मुझे मालूम होता है।

हज़ारों लोग मेरी पूजा करते हैं, तब मुझे घबराहट-सी होती है। इस पूजा में मुझे मिठास मालूम हुई हो अथवा उससे मैं उस पूजा के योग्य हूँ, ऐसा मुझे मालूम हुआ हो, ऐसा कभी न हुआ। किन्तु मेरी अयोग्यता की जानकारी मुझे रही है। मुझे याद नहीं आता कि कभी सम्मान की भूख मुझे लगी हो। किन्तु काम की भूख अवश्य है। सम्मान देने वालों से काम लेने के लिए मैं फड़फड़ाया हूँ और जिन्होंने काम नहीं दिया उनके सम्मान से

दूर भगा हूँ। मुझे जहाँ पहुँचना है, वहाँ जब मैं पहुँचूगा तभी कृतार्थ होऊँगा। लेकिन ऐसा दिन कहाँ जब मियाँ के पाँव में जूती?

दुनिया के विरुद्ध खड़े रहने की शक्ति प्राप्त करने के लिए औद्धत्य या तुच्छता अपने में लाने की आवश्यकता नहीं है। जीसस दुनिया के विरोध में खड़े रहे, बुद्ध भी अपने युग के विरोध में रहे, प्रल्हाद ने भी वैसा ही किया। वे सब विनय की मूर्तियाँ थीं। इसके लिए आत्म-विश्वास तथा प्रभु पर श्रद्धा चाहिए। औद्धत्य से विरोध करने वाले अन्त में गिरे हैं। तेरा औद्धत्य और तेरा क्रोध कई बार तो ढोंग होता है। किन्तु यह ढोंग भी बुरा है। ढोंग अन्त में आदत का रूप धारण करता है और बहुत बार बेकार ही गलत ख्याल का कारण होता है। ऐसा न हो इसलिए मनुष्य को बहुत सावधान रह कर चलने की आवश्यकता है। अन्त समय में एकाकी बन्द रहने की शक्ति आत्यन्तिक नम्रता के सिवा असम्भव मालूम होती है। और यह शक्ति आई हो तभी वह सच्ची नम्रता है। उसकी जाँच उसी में है। बहुत से बहादुर गिने गये लोग सचमुच वैसे थे या नहीं, यह जाँचने का अवसर ही समाज को नहीं मिलता।

ता०—२८—८—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

[पत्र—४५]

अभिमान और नम्रता : लोकमत : लोकमर्यादा

चि०—, तेरा पत्र मिला। राखी मिली। दो दिन देर से। किन्तु मैंने तो वह सोमवार को ही मिली, ऐसा मान लिया।

केला यदि अनुकूल न हो तो जबरन खाने से कोई लाभ नहीं। प्रत्येक पेट की कुछ विशेषता होती ही है।

तेरे क्रोध का विश्लेषण ठीक ध्यान में आ गया। तू क्रोध को जीत ही लेगी, ऐसा मुझे मालूम होता है।

खुद की कुछ आवश्यकता हो, वह न बताना यह बड़ा अभिमान और अन्याय है और उससे अपने प्रिय जनों पर बड़ा बोझ पड़ता है। विनय और निरभिमान यह अपनी आवश्यकता जानने के दुःख से प्रियजनों को बचाती है। यह विनय का पहला पाठ है। अब सीख ले।

लोकमत माने जिस समाज के मत की हमारे लिए कीमत है, उसका मत। यह मत नीति के विरुद्ध न हो तब तक उसे सम्मान देना अपना धर्म है। (राम ने धोबी के शब्द सुनकर सीता का परित्याग किया इस) धोबी की कथा से शुद्ध निर्णय करना कठिन है। आज हमें तो वह जरा भी अच्छा न लगेगा। ऐसी टीका सुनकर अपनी पत्नी का त्याग करने वाले को निर्दय और अन्यायी ही कहना चाहिए। किन्तु रामायण में कवि यह प्रसंग किस दृष्टि से लाया है यह मैं न बता सकूँगा। हमें इस झंझट में पड़ने की जरूरत नहीं है। कम से कम मैं तो इस झंझट में न पड़ूँगा। रामायण की तरह पुस्तकें भी मैं इस दृष्टिकोण से नहीं पढ़ता।

लड़कियों के साथ मेरे खुलेपन के व्यवहार से आश्रमवासियों को धक्का लगता हो तो वह खुलापन मुझे छोड़ देना चाहिए, यह मेरा मत है ही। यह छूट लेने का कोई स्वतन्त्र धर्म नहीं और ली तो उसमें कोई नीति-विरोध नहीं होता। किन्तु ऐसी छूट न लेने से लड़कियों पर बुरा परिणाम होता हो तो मैं आश्रमवासियों को समझा लूँगा और छूट ले लूँगा। लड़कियों ने ही मुझे न छोड़ा तो क्या करना, यह देखना मेरा काम है। मैं जो छूट जिस तरह लेता हूँ उसकी नकल किसी को करना उचित नहीं है। वह स्वभावतः होना चाहिए। 'आज से मैं छूट लूँगा' ऐसा विचार कर कृत्रिमता से कोई छूट नहीं लेगा। और यदि किसी ने ली तो उसे भयंकर कहना चाहिए।

मुख्य बात तो यह है कि विकारों के अधीन होकर अत्यन्त निर्दोष मालूम होने वाली छूट भी जो कोई लेता है वह गढ्ढे में गिरता है और दूसरे को भी गिराता है। अपने समाज में स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध स्वाभाविक नहीं हुआ है तब तक अवश्य सावधान होकर चलने की आवश्यकता है।

इस विषय में सबके लिए उपयुक्त ऐसा कोई राजमार्ग नहीं है। तेरी खुद की चाल-चलन में बहुत सी असंस्कारिता है ही। तेरी स्वाभाविक निर्दोषता से तू बच पाती है। किन्तु उसका तू अभिमान करती है और उसे हठ से पकड़ रखती है, यह ठीक नहीं। उसमें भी अविवेक है। आज उसकी हानि तुझे मालूम नहीं होती, किन्तु कभी तो पश्चात्ताप करना पड़ेगा। किसी का भी अभिमान रह न सका। सभी लौकिक मर्यादाएँ बुरी होती हैं, ऐसा कहकर समाज पर आक्रमण न करना चाहिए। अब लोकमत का तात्पर्य समझ में आया ?

ता०—१८—८—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—४६]

भगिनी भाव : भाग्य का अर्थ : वेश्याओं का उद्धार

चि०—, तेरा पत्र मिला। मुझसे विशेषण प्राप्त करने के लिए तो तू विभिन्न उन उन विशेषणों से लायक गुण प्रगट नहीं कर रही है ? ऐसा करेगी तो विशेषणों का कोई मूल्य न रहेगा। ० ० ० ० ० ० में होते हुए भी ० ० ० की ग्लानि यह दूर न कर सकी, यह आश्चर्य है। राखी पूर्णिमा के दिन उसने रक्षाबंधन तो किया ही होगा। किन्तु यह सूत के डोरे से पर्याप्त हुआ क्या ? ० ० ० ० के शोक का मुख्य कारण जानकर उसे दूर करना ० ० ० की शक्ति के बाहर का न होगा। ० ० ० अपनी पत्नी की पूजा करता था। दोनों विवाहित होने पर भी ब्रह्मचर्य का पालन करते थे, ऐसी मेरी समझ है। ० ० ० जाते ही ० ० ० को बड़ा धक्का लगा। ० ० ० ० के अत्यन्त अन्तर में विवाह करने की कदाचित् इच्छा होगी। अपनी स्थिति वह खुद नहीं जान सकता। किन्तु उसे उसी की तरह भावना-प्रधान पत्नी चाहिए। वह मिले या न मिले। किन्तु उसके बजाय उसे भावनाप्रधान बहिन मिली तो भी कदाचित् ० ० ० खुल जायगा और उसका मन खाली होगा।

मेरी कल्पना है कि ० ० ० पूर्ण ब्रह्मचारिणी है। उसकी ० ० ० से मित्रता है। उसमें भी भावना है। और तूने ० ० ० ० की उदासीनता के बारे में लिखा इसलिए मुझे इतना लिखने की प्रेरणा हुई। ० ० ० को मैंने ठीक पहचाना है, ऐसा तुझे मालूम हुआ और यह काम उसकी शक्ति के बाहर का नहीं है ऐसा तुझे मालूम हुआ तो चाहे यह पत्र उसके पास भेज दे। यह उसकी शक्ति के परे अथवा क्षेत्र के बाहर मालूम हो तो इतना अंश भूल जा। ० ० ० ० शुद्ध प्रेम का भूका है। किन्तु उसमें पसंदगी और नापसंदगी भरी हुई है। थोड़ों पर ही वह प्रेम कर सकता है। इससे वह मन ही मन कुढ़ता रहता है। ऐसे आदमी को पत्नी की आवश्यकता कम होती है। पत्नी में तो वह लिपट जा सकता है। ऐसे आदमी को विकारहीन बहिन चाहिए। वह मिली तो ही उसका ठीक चल सकता है। अपनी स्त्रियाँ यह गुण अपने में नहीं लातीं। वे पत्नी हो सकती हैं, बहिन नहीं। बहिन होने के लिए बड़ी त्यागवृत्ति की आवश्यकता होती है। जो पत्नी होती है वह पूर्णतः बहिन हो ही नही सकती; यह स्वयंसिद्ध है, ऐसा मुझे तो मालूम होता है। सच्ची बहिन समस्त संसार की बहिन हो सकती है। किन्तु पत्नी अपने को एक ही पुरुष को समर्पित करती है। पत्नी-गुण की आवश्यकता है। किन्तु वह सीखना नहीं पड़ता। क्योंकि उसमें विकारों की शान्ति के लिए स्थान है। संसार की बहिन होने का गुण कष्टसाध्य है। जिसमें ब्रह्मचर्य स्वभावसिद्ध है और जिसमें सेवा-भाव उत्कृष्ट स्थिति को पहुँच गया है वही बहिन हो सकती है।..... तू खुद ऐसी आदर्श बहिन हो जा, यह तो मेरा प्रयत्न है ही। काम कठिन है किन्तु प्रभु को जो करना होगा वह करेगा।

....जन्माष्टमी के दिन तू आश्रम में पहुँची, यह ठीक हुआ। याद रख, क्रोध को जीत। ० ० ० तेरे साथ आने के लिए तैयार ही नहीं हुआ यह तुझे मालूम है? उस पर क्रोध मत कर। वह लड़का है। तू लड़का नहीं है। उसे जीतने में तेरी विजय है। उसे न जीतने में तेरी पराजय है।

सुसंस्कारी माँ-बाप की परीक्षा कौन लेगा? गर्भ रहा, तब माँ-बाप की

कैसी स्थिति थी, कौन बता सकता है। अतः मैं समझता हूँ कि 'अच्छे का फल अच्छा ही' इस निरपवाद नियम को ग्रहण किये रहने में ही सार है। हर वक्त अमुक व्यक्ति के बारे में यह नियम सिद्ध करते न बना तो उसका कारण अपना अज्ञान; नियमों की अपूर्णता नहीं।

भाग्य को मैंने माना तो भी वह मिथ्या करने लायक नहीं है। भाग्य माने पूर्व कर्मों का परिणाम।

वेश्याओं का उद्धार करने के लिए पुरुषों को पशुत्व छोड़ देना चाहिए। जब तक मनुष्य पशु-सृष्टि में रहेगा तब तक वेश्याएँ भी रहेंगी। वेश्याओं ने अपना व्यवसाय छोड़ दिया और वे सुधर गईं तो उनसे 'कुलीन' कहे जाने वाले पुरुषों को अवश्य विवाह करना चाहिए। 'एक बार वेश्या तो सदा वेश्या' यह नियम नहीं है।

सेना के सिपाहियों के लिए लड़कियों को भगाया जाता है, यह विचार मुझे अवास्तव प्रतीत होता है। व्यवस्थित राज्य में ऐसा होने की ज़रा भी सम्भावना नहीं।

ता०—२६—८—३१ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

[पत्र—४७]

आश्रम और शिक्षित स्त्रियाँ : प्रभु में विश्वास

चि०—, इस समय तुझे कौन सा नया विशेषण दूँ, सुझाई नहीं देता। तू जो माँग वही दूँ।

मुझे नहीं मालूम होता कि वे दो स्त्रियाँ आने के कारण हम कह सकते हैं कि अब पढ़ी-लिखी औरतें आने लगीं। वैसा कहा जाय तो बीच-बीच में कोई-न-कोई पढ़ी-लिखी स्त्री रास्ता भूलकर आ जाती है। किन्तु उनमें से एक को भी हम आश्रम में संग्रह न कर सके। तुझे पढ़ी-लिखी माना और तेरा संग्रह किया है, ऐसा मानें तो अलग बात है।

किन्तु यह एक अपवाद हुआ। एक चिड़िया आई कि गरमी आई, ऐसा थोड़े ही माना जायगा।

० ० ० के बारे में मैं दुखी हूँ। उसे वर्ग से छुट्टी दी, यह ठीक हुआ। किन्तु उसे भूल मत जाना। उस पर नजर रखकर उसे सीधे रास्ते ला सको तो लाओ। ० ० ० के बारे में तेरी अड़चन मेरी समझ में आती है। यदि तुझमें उदारता और हिम्मत आवे तो उसके बारे में उसके माँ-बाप से तुझे बातें कर लेनी चाहिएँ और उसके हित का कोई रास्ता निकालना चाहिए।

········ अपने रास्ते में खुद काँटे बोता है और वे गड़े कहकर शिकायत करता है। अपनी खुद की शक्ति पर हम विश्वास कर रहे हों तो शायद हम सफल न होंगे। किन्तु ईश्वर की शक्ति पर विश्वास करें तो घने अँधेरे में भी प्रकाश दिखाई देगा। 'मुझमें प्रेम हो तब तो' ? कह कर तूने पीठ फेर ली तो मेरा कथन निरर्थक है। और अपने में प्रेम है, यह समझने पर भी आपको बहुतों को जीतते क्यों न बना ? फिर मुझे कहने का आपको क्या अधिकार ? ऐसा कह कर तू अपना हृदय-द्वार बन्द कर लेगी तो भी मैं लाचार बन जाऊँगा। अपनी अपूर्णता मैं मंजूर करता हूँ। तू उसका क्यों अनुकरण करती है ? मेरे अनुभवों से मैं तुझे जो देता हूँ तू उसका उपयोग कर। साथियों के दोष लेकर रखने नहीं होते; वे दोष बचाने होते हैं और उनके जो गुण हों उन्हें ग्रहण करना होता है। और मैं तेरी तरह हिम्मत हारकर बैठता नहीं, कठोरतम हृदय को भी पिघला देने की मुझे उम्मीद है, अतः मैं प्रयत्नशील रहता हूँ।

तू भोजनगृह में समाचारपत्र पढ़कर सुनाती होगी या हँसी-मजाक करती होगी तो मैं वह बुरा ही कहूँगा। भोजनगृह में मौन ही रखना चाहिए, वहाँ पढ़कर क्या सुनाया जाय ? ······ ।

······तेरा पढ़ना भी गंभीरतापूर्ण, कमसे कम भोजनगृह में तो, होना चाहिए। अतः इतना सुधार कर डाल। यदि तू भोजनगृह में हँसी-मजाक करने लगी तो लड़कों का क्या होगा ? और वे सब यदि तेरी तरह करने लगें तो भोजन-गृह बंदरों का जंगल हो जायगा और अनुशासन टूट जायगा।

यह सब 'स्मार्ट लिटिल गर्ल' के 'स्मार्ट' मस्तिष्क में भर गया ? या सब 'स्मार्टनेस' आश्रम से चोरी हो गया ? आज अब अधिक नहीं लिखता।

ता० ३१—७—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—४८]

अवनति का कारण : अहंकार का नाश : स्त्रियों का ब्रह्मचर्य : मायावाद : मृत्यु

चि०—तूने धीरज और विश्वास रखा तो मेरी 'स्वभाव-पुस्तक' के सारे पृष्ठ तेरे सामने खुल जायेंगे। 'जो मेरा (सत्य का) प्रीति से निरन्तर भजन करता है उसे मैं बुद्धियोग देता हूँ' यह सत्यनारायण की प्रतिज्ञा है। इसके मन से मेरे स्वभाव के सब पृष्ठ खुल जाते हैं। पुस्तक सामने पड़ी हो तो भी वह पढ़ने में न आई अथवा पढ़ने की किसी ने तकलीफ न उठाई तो वह दोष किसका ? मैं थोड़ा सा बह गया तो भी मैंने तुझे पुस्तक पढ़ने की पद्धति बताई। तू कहेगी 'मुझे तो यह मालूम ही था' ऐसा कहा तो मैंने जो तुझे सर्वज्ञा कहा था वह सच निकला, यह कहना चाहिए।

० ० ० बहिन बीमार हैं, तुझे मालूम है? उससे बातें तो कर। अपनी कल्पना हमें जितना कायर बनाती है उतने डर का कारण वस्तुत: नहीं होता। 'मंछाभूत और शंका डाकिनी' (इच्छारूपी भूत और शंकारूपी डाकिनी) यह कहावत एक दम सच है—सोलहो आने।

तेरे बारे में मैंने ० ० ० के पत्र में क्या लिखा है ?……मुझे आज के तेरे ब्रह्मचर्य के बारे में ज़रा भी सन्देह नहीं। कल का मैं नहीं जानता। कल का तू जानती हो तो नारद और राम से भी तू बढ़कर है। ऐसा है तो भी मैंने तेरे संकल्पों को हमेशा ही उठा रखा है। तुझे तुरन्त कोई फुसला लेगा, ऐसा मैं नहीं मानता। किन्तु तेरे समान दृढ़ स्त्रियों को विवाह करते मैंने देखा है। उसमें उन्हें दोष भी क्यों दें ? अतः आज केवल मैं तेरे बारे में इच्छा ही रखूँगा; तुझे आशीर्वाद दूँगा; मुझसे होगी मदद करूँगा और मुझसे होंगे

उतने प्रहार भी करूँगा। अन्त ईश्वर के और तेरे हाथ में। तेरे पत्र जैसे आते हैं वैसे ही मुझे चाहिएँ। तू कृत्रिम हुई तो मेरी दृष्टि से बेकार हो गई। तेरे अन्तर में गाँठें हैं; वे जैसे-जैसे दिखाई दें वैसे-वैसे (उन्हें) निकालने का प्रयत्न करूँगा। किन्तु मैं भी निकालने वाला कौन? यह काम एक आदमी के बस का नहीं। भगावान मुझे जितने अंशों में करने देगा उतने अंशों में मैं कारण होऊँगा। मेरा उसमें स्वार्थ है। क्योंकि तेरे द्वारा मुझे बहुत-सा काम करा लेना है। तुझमें मैं जो भर रहा हूँ वह व्यर्थ ही जायगा ऐसा मुझे मालूम होता तो इतने बड़े पत्र लिखने की तकलीफ क्यों उठाता?

किसी व्यक्ति अथवा समाज की अवनति का सच कारण आज तक खोजा गया है, ऐसा सुनने में नहीं आया। अनुमान बहुत से किये जा सकते हैं। तात्कालिक कारण भी मिलता है। और वह हमेशा एक नहीं हुआ करता। किन्तु सामान्यतः ऐसा कहा जा सकता है कि अवनति के मूल में धार्मिक न्यूनता होती ही है। गुलामी कभी मूल कारण नहीं हो सकती क्योंकि वह स्वयं और कारणों के कारण—अनेक प्रकार की दुर्बलताओं के कारण आती है।

पड़ोसी का कर्तव्य अपने पड़ोसी को हमेशा धार्मिक पद्धति से मदद करना है।

अहंकार का बीज शून्यता के अनुभव से ही नष्ट होगा। एक क्षण तक कोई अन्तर में गहरे उतर कर विचार करेगा तो उसे अपनी अति लघुता मालूम हुए बिना न रहेगी। पृथ्वी से तुलना करते हुए जन्तुओं को जैसे हम तुच्छ समझते हैं उससे भी हजार गुना बड़े परिमाण में इस संसार से तुलना करते समय मनुष्य तुच्छ है। मैं बुद्धि होने उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसका बड़प्पन अपनी क्षुद्रता का अनुभव करने में ही है। क्योंकि अनुभव पूरा होते ही दूसरा यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि जैसे वह स्वरूप के कारण क्षुद्र है वैसे ही परमेश्वर का क्षुद्रतम अंश होने पर भी परमेश्वर में उसका लय हो जाता है अतः वह परमेश्वर-स्वरूप है और इस सूक्ष्म अणु में भी परमेश्वर की शक्ति भरी हुई है।

मथायावाद मैं अपने ढंग से मानता हूँ। कालचक्र में यह जगत् माया है किन्तु जिस क्षण में उसका अस्तित्व है उस क्षण तक वह है ही। मैं अनेकान्तवाद मानता हूँ।

यदि कोई एक वस्तु मनुष्य के सामने प्रत्यक्ष है तो वह मृत्यु ही है। ऐसा होने पर भी इस अनिवार्य प्रत्यक्ष वस्तु से डर मालूम होता है यही बड़ा आश्चर्य है। यही ममता है, नास्तिकता है। उसे पार कर जाने का धर्म अकेले मनुष्य को ही प्राप्त है।

पाप और पुण्य यह मृत्यु के अनन्तर भी जीव के साथ ही जाता है। जीव जीव रूप से उसे भोगता है। फिर वह दूसरे दृश्य शरीर में हो अथवा सूक्ष्म शरीर में, उसमें इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

ता०—११—६—३२ बापू के आशीर्वाद
यरवडा मंदिर

[पत्र—४६]

आश्रम और आय-व्यय

चि०—तेरा पत्र मिला। सबका समाचार अच्छा दिया है। ० ० ० का काम कठिन है। तुम पर उसकी श्रद्धा है। कुछ कर सको तो देखो। वह भोली है; उसका हेतु शुभ है किन्तु बहुत विह्वल और अव्यवस्थित मन वाली है। प्रेम से जो करते बने करो।

० ० ० ने क्षमा माँगी, अच्छा किया। अब उसे निकट रखना सम्भव हो तो रख। वह बहुत चतुर है इतना तो मैंने देखा है ही। अपनी चतुरता का अच्छा उपयोग करेगा तो कितना भला होगा।

आश्रम का पैसा जिसके उपयोग में लाना उचित है उसके लिए लाया जाता है। फिर वह कोई भी हो। किन्तु आलोचना तो चाहो जिस कार्य की हो सकेगी। गल्तियाँ होती होंगी, किन्तु आश्रम का हेतु हमेशा तटस्थता से कार्य करने का होता है।

आश्रम के पैसे-पैसे का खर्च देखने का लोगों को अधिकार है। आश्रम खासगी संस्था नहीं है। आय ही उसके खर्च की मर्यादा है। आश्रम के पास कौड़ी भी न हो तो चल जायगा। करोड़ मिले तो भी वह खर्च कर देगा। देने वालों को विश्वास है तब तक वे देंगे। संस्था को ईश्वर चला रहा है। देने वालों को वही प्रेरणा देता है।

मैं समझता हूँ कि कोई भी व्यक्ति आश्रम से बाहर जावे तो उसे मन्त्री से आज्ञा लेनी चाहिए।

ता०—१५—१०—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—५०]

आश्रम और विनय : भावना

चि०—अब मुझ पर इतना बोझ आ पड़ा है कि आश्रम को लम्बे पत्र भेज सकूँगा या नहीं, इसमें सन्देह है। मेरे लम्बे-चौड़े पत्र अब समाचार-पत्रों में पढ़ेगी तब तुझे सन्तोष होगा यह मैं जानता हूँ।

दिवाली के दिन के वर्णन पढ़कर वहाँ उड़कर आऊँ, ऐसा मन में आया। किन्तु देखता हूँ कि पिंजड़ा ऊपर से और इधर-उधर से बन्द ही है, पंख फड़फड़ाकर चुप हो बैठा।

तेरी जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है, यह मैं समझता हूँ। ईश्वर तुझे सँभाल लेगा। तू आत्म-विश्वास न गँवा बैठना।

तू मक्खन बढ़ाकर यदि अच्छी हो गई तो मैं उसे सस्ती दवा समझूँगा।

तुझे इतना ही बताना है कि धीरज न छोड़। लड़कों के विषय में विनय का ही उपयोग करना चाहिए। आश्रम में रहने वालों ने गलती की कि तुरन्त 'अपना रास्ता पकड़ो' ऐसा कहना अत्यन्त अपमानकारक है। ऐसा किसी से मत कहना .... ।

हमारा (राष्ट्र) गीत हमें शोभा देने लायक ही है। स्वप्नों का विश्लेषण मुझे करते नहीं बनता।

''''''भावना कब प्रगट की जाय, इसका एक नियम नहीं है। मैं कहूँगा कि सत्यनारायण जब प्रेरणा करें तब प्रगट करनी चाहिए।

ता०—६—११—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—५१]

भावना का विश्लेषण : तत्त्व और व्यवहार

चि:—,आज भी छोटा ही पत्र। आजकल हरिजन भाई-बहिन बहुत समय लेते हैं।

''''''''''मेरी भावना के विषय में तू पूछती है उसमें से कुछ निकल सकेगा यह नहीं मालूम होता। क्योंकि किसी को भी उत्पन्न हुई भावनाओं का पूरा विश्लेषण करना नहीं आता।

जब तत्त्व आचरण में उतरता नहीं दिखाई देता तब समझना चाहिए कि हमने तत्त्व ठीक नहीं पहिचाना। शुद्ध तत्त्व आचरण में आना ही चाहिए। सम्पूर्णतः कोई भी तत्त्व आचरण में आही नहीं सकता। किन्तु जो आचरण तत्त्व के निकट नहीं जाता वह अशुद्ध और त्याज्य है।

ता०—१३—११—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—५२]

संयम और आहार : प्रतिज्ञा-पालन में ईश्वर का अनुग्रह

चि०—, तेरा पत्र मिला। जिनकी समझ में संयम का मूल्य आया होगा उन्हें तो आहार का परिवर्तन अच्छा ही लगेगा। आश्रम में जेल का भोजन शुरू किया गया है, यह समाचार पत्रों में किसने दिया। यह बात

सच हो तो हर्ज नहीं। किन्तु हम तो घी, दूध, इत्यादि बहुत-सी चीजें लेते हैं। ऐसा होने पर भी जेल का भोजन शुरू किया है, ऐसा कैसे कहा जा सकता है? इस गप के आधार का पता लगे तो लिखना।

तेरी शिकायत सच है कि कड़े नियम को मैं ही बनाता हूँ और विलासी जन आश्रम में आते हैं उसका कारण भी मैं ही हूँ। मैं तो बता ही चुका हूँ कि इसका विरोध कर आप सब इसका प्रतिकार कर सकते हैं। और (अपनी) ताकत के बाहर होने वाले किसी को भी आश्रम में लेने के लिए आप बाध्य नहीं हैं। मैं केवल सलाह ही दूँगा। अमल में लाना न लाना केवल आप लोगों के हाथ में है। इतना मुझे अवश्य मालूम होता है कि खुद कड़े नियमों का पालन करते हुए भी अनियमित ऐसा कोई आया तो उसे चला लेने की, उसके विषय में उदारता दिखाने की शक्ति हममें होनी चाहिए।

छोटी-बड़ी जो प्रतिज्ञा हम करें उसका पालन कर सकें तो वह ईश्वर का अनुग्रह है; इसमें सन्देह नहीं।

ता०—२७—११—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—५३]

पत्रों की गोपनीयता : मानव ईश्वर का प्रतिनिधि है

चि०—, '० ० को तेरा पत्र पढ़ने न दिया जाय' इस तेरी निषेधाज्ञा का मैंने सम्मान किया है। किन्तु निषेधाज्ञा उन्हें पढ़कर सुनानी पड़ी। मैं मानता हूँ कि उनके बारे में तूने जो लिखा है वह उन्हें मालूम न हो, ऐसी तेरी भी इच्छा न होगी। अतः उतना ही भाग पढ़कर दिखाया और बाकी मत पढ़ो यह बताया। किन्तु तेरी निषेधाज्ञा मुझे पसन्द नहीं है। आश्रम का एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कोई बात क्यों छिपाये? छोटी लड़कियों ने ऐसी इच्छा की, अपढ़ बड़े आदमी को भी वैसा मालूम हुआ तो वह एक समझने लायक बात है। किन्तु तुझे छिपाने का क्या कारण है? तेरे पत्र दूसरों ने

पढ़े तो उसकी पवित्रता कम नहीं होती। तेरे विचार संसार को मालूम हुए तो उसमें तुझे संकुचित होने की आवश्यकता नहीं। हमें गुप्त विचार करने के लिए अधिकार नहीं है। ऐसी आदत लगाने से विचारों पर अपना अंकुश आसानी से लग सकता है। मनुष्य मात्र ईश्वर का प्रतिनिधि है। ईश्वर को तो अपने सब विचार समझ में आ ही जाते हैं। किन्तु वह हमें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता इसलिए हम ठीक तरह पहिचानते नहीं कि वह हमारे विचार जानता है। किन्तु मनुष्य को उसका प्रतिनिधि कहकर पहचाना कि उसे अपने विचार मालूम होने का संकोच न होना चाहिए। और यह प्रतिनिधि प्रत्यक्ष है इसलिए अपने विचारों पर अपना प्रभुत्व आसानी से रहता है। तू समझदारी से अपनी निषेधाज्ञा वापस ले ले, यह मैं चाहता हूँ . ...।

(मुझे आशा थी कि दायें हाथ से ही लिख सकूँगा। किन्तु अब दिखाई देता है कि वह हाथ उपयोग में न लाना चाहिए। अतः मन में है उतना अब शायद लिखा न जा सकेगा।)

० ० बहिन के बारे में तेरे मन में आया वह तूने लिखा है तो हर्ज नहीं। तू जो लिखेगी वह द्वेष की भावना से नहीं, इतना उसे मालूम है ही। तू अस्पताल से जल्दी लौट आई, ऐसा प्रतीत होता है। डाक्टर की सूचनाओं का पूर्ण पालन करती है तो कोई हानि नहीं हो सकती। ० ० की कथा दुःखद है। ० ० का पक्ष समझे बिना ० ० के दोष निकालने के लिए मैं तैयार नहीं। ० ० स्वच्छ है। निर्दय नहीं; अपना धर्म जानने वाला है। अधिक समय मिलता तो अधिक समझाता। तुझसे हो उतनी तू ० ० की सेवा कर। वह यदि अकेली पड़ी हो तो उसमें उसका दोष कम नहीं। किन्तु इस दोष के कारण भी उसकी सेवा करने में हमसे कमी न होनी चाहिए। उसमें गुण भी बहुत से हैं।

० ० को कुछ समझता ही नहीं। वह भोला और खिलाड़ी है। मैंने उसके पिता को लिखा ही है कि आप उसे पास रखिए।

ता०—१८—१२—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

[पत्र—५४]

चिन्ता कल्पना की प्रजा है : क्रोध-विष : अपनी परीक्षा

चि०—, तेरा पत्र आने से मैं चिन्ता से मुक्त हो गया। चिन्ता भी कल्पना की ही प्रजा (सन्तान) है। पत्र आया नहीं तो चिन्ता क्यों, और आने से मुक्ति क्यों ? इसका स्पष्टीकरण तूने मुझसे पूछा तो वह मैं न कर सकूँगा, और करना ही हुआ तो कहूँगा कि 'इसका नाम मोह है।'

तू मुझे पागल-सी कुछ भी लिखती है इसका मुझे बुरा नहीं मालूम होता। किन्तु मुझे तेरी गलती मालूम हो और वह मैं न बताऊँ तो मैं तेरा हितेच्छु, साथी, मित्र या पिता न रहूँगा। मुझे यह आश्चर्य मालूम होता है कि मैं शुद्ध भावना से जो बताता हूँ उस पर तुझे क्रोध क्यों आता है ? तू मुझे धन्यवाद क्यों नहीं देती ? अपने बारे में अपने साथी के मन में जो आवे, वह उसने बताया तो क्या हमें उसे धन्यवाद न देना चाहिए ? मैंने तो यह पाठ बचपन से ही सीखा है। इतना तू मुझसे सीख ले। मेरी परीक्षा झूठी हो तो मैं दया का पात्र हो जाऊँगा। तुझे क्या, दोनों ओर से लाभ ही होगा। क्योंकि जिससे तू जुड़ गई है उसे और अच्छी तरह पहचान सकेगी। मेरे दोष, मेरा कच्चापन तुम सब पूर्णतः जान लो, ऐसी मेरी इच्छा है। और यह दिखाने का मेरा हमेशा प्रयत्न है। अपने विचार मैं छिपाना नहीं चाहता। उन्हें लिखने की शक्ति मुझमें आई तो मैं उन सबको लिख डालूँगा। किन्तु वह सम्भव नहीं यह मैं जानता हूँ। विचारों की गति का साथ दे सकने वाली एक भी शक्ति संसार में है, ऐसा मुझे तो सम्भव नहीं मालूम होता। कोई विचार नापने का यंत्र खोज निकाले तो मालूम हो सकेगा। इतना लिखते हुए भी मेरे विचार ब्रह्माण्ड के पाँच-सात चक्कर लगा आये।

अपने में विष है या नहीं, इसकी परीक्षा हमसे करते ही बनेगी, यह नियम नहीं। इसे तू भी स्वीकार करेगी। विष जमा कर रखने की इच्छा न होगी तो उससे विष न होगा, ऐसा भी नहीं है। वह अपने पर अनिच्छया

आक्रमण करता है। जिसमें क्रोध है उसमें विष है ही, यह बात शायद तुझे मंजूर न होगी। वह तुझे मंजूर न हो तो (मानना पड़ेगा कि) विष का अर्थ हम दोनों एक नहीं करते। 'बा' ने मुझे कई बार विषैला माना है, यह मुझे स्मरण है। मैं उसका अभियोग कैसे अस्वीकार करूँ। मुझे अपनी बातों में विष मालूम न हुआ तो क्या? वह उसे लगा इतना मुझे बस होना चाहिए। जो वचनों से पूर्णतः सत्य और अहिंसामय है, वह कभी किसी को दंश न करेगा; प्रथम दंश की तरह मालूम होना अलग चीज है। किन्तु वैसे अनुभव लेने वाला ही पीछे से उनमें का अमृत ग्रहण करता है।

तू सब चीजों में खुद की परीक्षिका मत बन, ऐसा मेरा कहना है। शायद ऐसा हो कि दूसरे अधिक अच्छी परीक्षा कर सकें। विष-प्रकरण यहीं समाप्त करता हूँ।

आश्रम छोड़ने का तेरा प्रश्न आज अप्रस्तुत है। मैं छूटकर आश्रम में रहने लगूँगा तभी यह प्रश्न उठ सकता है, ऐसा तेरे पत्र से मैं समझता हूँ। नैतिक दृष्टि से तो यह प्रश्न तभी निकला तो सुलझ सकेगा। मैं आश्रम में रह न सकूँगा, तब तक आश्रम की दृष्टि से मैं जेल में होने की तरह ही कहा जाऊँगा। और जब मैंने आश्रम से विदाई ली उसी समय जो तुम लोग पीछे रह गये थे, मैं वापस आ सकूँगा तब तक बंधन में ही रहे। मेरा यह मत यथार्थ हो तो वहाँ रहने के लिए मेरे आने के पश्चात् क्या करना उचित है इसका विचार करना। अभी उस पर विचार करना शक्ति और समय का अपव्यय है।

× × ×

अपने जाल में मैं किसी को फँसाना नहीं चाहता। सब मेरी ही मूर्तियाँ बनीं तो मेरी क्या दशा होगी। ऐसा प्रयत्न भी व्यर्थ समझता हूँ। किन्तु कदाचित् मैं किसी को ठगने का प्रयत्न भी करता हूँ तो भी तू आत्म-विश्वास क्यों खोती है? तेरे पत्रों से प्रमाणित है कि तू सावधान है। हाँ, इतना तो सच है कि हम ठग जायेंगे, ऐसा डर तुझे हमेशा मालूम होता रहता है।

यह बुरा लक्षण है। निश्चय करने पर डर काहे का? अथवा 'ठगना' इस शब्द का अर्थ हम दोनों एक ही न करते होंगे, ऐसा भी हो सकता है।

ता० २२—१—३१ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मंदिर

[पत्र—५५]

आश्रम : आश्रम और मैं : आश्रम धर्मशाला है : मेरी मानी लड़की लक्ष्मी : स्त्रियों का ब्रह्मचर्य

चि०—, यह मौनवार का सवेरा है। तीन बजे उठकर तेरा पत्र हाथ में लिया है। यह पत्र मुझे बहुत पसंद आया है। मुझे चाहिए, वह सब तूने दिया है। स्त्रियों की ओर से जो मिलने की मैंने कल्पना की है वह उसमें है—बिना आडम्बर किये छोटे-मोटे किन्तु वैज्ञानिक को अत्यन्त उपयोगी। ऐसे तटस्थ पत्रों से मुझे ज्ञान प्राप्त होता है और तुझे तथा औरों को मैं रास्ता दिखा सकता हूँ।

आश्रम सचमुच 'धर्मशाला' है। 'धर्मशाला' के दो अर्थ हैं : दान कर दिया हुआ निवासस्थान, और धर्म जानने का और जानकर उसका पालन करने के प्रयत्न का स्थान। इसमें के दूसरे अर्थ में वह धर्मशाला है। किन्तु सत्य ही धर्म है। अतः सत्य की खोजकर उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करने की अर्थात् सत्य का आग्रह रखने की शाला माने सत्याग्रह-आश्रम।

सत्य खोजते समय जीवमात्र के साथ ऐक्य साधना पड़ता है। अतः आश्रम एक विशाल बनता जाने वाला परिवार है। ऐसा होकर भी वह उससे अधिक है। क्योंकि वह धर्म के साथ है। उस पर धर्म अवलम्बित नहीं। और वह शिक्षालय है और होकर भी नहीं है। क्योंकि वह परिवार है। इस कारण सामान्य शिक्षा के बाह्य नियम उस पर 'जड भरत' की तरह लागू नहीं किये जा सकते। नियम की आत्मा सम्हालने के लिए नियम के शरीर—बाह्य रूप-को त्यागना पड़ेगा।

एक उदाहरण लेकर उस पर यह बात कैसे किस प्रकार लागू होती है, यह हम देखें। लक्ष्मी को बढ़ाने में हमारी—तेरी—परीक्षा है। परिवार के बच्चों को हम क्या करेंगे ? तेरी सगी बहिन को तू क्या करेगी। ०० लक्ष्मी ने नियम न पाले, वह पढ़ी नहीं इसमें दोष मेरा, बाद में तेरा। बीच के लोगों को मैं छोड़ देता हूँ। . यह काम स्त्री का ही है। और विशेषकर जिसके हाथ सौंपा गया होगा उसका। मेरा अपराध प्रथम, क्योंकि माना हुआ पिता मैं और माता भी मैं ही। मैंने पितृधर्म का पालन किया किन्तु मातृधर्म का पालन नहीं किया। क्योंकि मैं घूमता ही रहा। अत: मुझे लक्ष्मी को शायद रखना ही नहीं था। किन्तु मैं कौन ? ईश्वर का दास। लक्ष्मी को मैं खोजने नहीं गया था। उसे ईश्वर ने भेजा। वह उसे सम्हालेगा .. ।

'बा', बाद में सन्तोक, फिर गंगाबेन और अब तू। तुममें से किसी ने उसे बुलाया नहीं था। काल के अनुसार और परिस्थिति के अनुसार वह उन-उन आदमियों के हाथ गई। अब तेरे हाथ से जो बने वह कर। पूछना हो तब मुझे पूछ। थक नहीं; निराश न हो। श्रद्धा रख और उस पर प्रेम की वर्षा कर। अन्त में ईश्वर मुक्ति देगा। वह हरिजनों की प्रतिनिधि होकर अपने पास ऋण लेने के लिए आई है। वह थोड़ी आलसी है तो उसका पाप तुझ पर, मुझ पर, सभी सवर्ण हिन्दुओं पर है। बोओ वैसा काटो ।

दूसरे लड़कियाँ लड़के आ रहे हैं, इससे घबड़ाने की आवश्यकता नहीं। वे जितना नियम पालन करें उतना ही लाभ होगा। सहन हो सके तब तक उन्हें रहने दिया जाय, न हो तब उन्हें छुट्टी दे दी जाय। धर्मशाला में मुसाफिर कुछ स्थिर नहीं रहते। परिवार के लोग भी स्थिर नहीं रहते। आश्रम की चौखट में जो रह सकेंगे वे ही रहेंगे। जो न रहेंगे वे जायँगे। इसमें सुख-दुःख काहे का ? और आज तो हमसे दूसरा कुछ और हो ही न सकेगा। शक्ति है तब तक जो आवें और जिन पर थोड़ी देर भी नजर रह सके उन्हें रख लिया जाय। बहुत से अपने आप भाग जायँगे। अपने नियम ही बहुतों को भगा देंगे। जो आया उसे मजदूरी करनी ही पड़ेगी।

पाखाना साफ़ करना ही पड़ेगा। अन्न को औषध मान कर खाना ही पड़ेगा। गुड़ नहीं मिलेगा और गेहूँ भी जब चाहिए तब न मिलेगा। आश्रम गरीब, कंगाल, भूख से मरने वाले लोगों का प्रतिनिधि है, ऐसा रोज सिद्ध करते जायँगे तो निरन्तर सुरक्षित और सुखी रह सकेंगे। अतः आश्रम में प्रतिदिन सादगी बढ़नी चाहिए। प्रतिदिन नियम-पालन कड़ाई से होना चाहिए। अग्नि अपने स्वरूप में रहे तो उसके साथ में न टिक सकने वाले जीव उसके पास रह ही न सकेंगे। यह अग्नि का दोष नहीं बल्कि गुण है। वैसे ही हम अपने स्वरूप में नहीं रहते। इसीलिए सभी उपाधियाँ उत्पन्न होती हैं। सादगी इत्यादि की कड़ाई के बारे में मैंने जो लिखा वह अपने तक सीमित है। हममें उसका अंश रोज़ बढ़ना चाहिए। अपनी रक्षा का मार्ग हमने अपने अन्तर से खोज निकाला है; वह बाहर नहीं है—हम माने आश्रम में समझ के साथ रहने वाले—मैं, तुम और प्रत्येक व्यक्ति। सब आश्रमवासी पाल सकें उतने ही नियम मुझे पालन करना चाहिए, ऐसा नहीं। मेरे हाथ से अधिक से अधिक उसका पालन हो सके वह मुझे करना ही चाहिए। इसी में आश्रम की उन्नति की कुंजी है। औरों के विषय में उदारता और खुद के बारे में कृपणता ऐसा करते हुए भी हम किसी तरह अपने बारे में विवेक के साथ रहने लगेंगे। क्योंकि बहुत बार औरों के बारे में उदारता सच्ची उदारता नहीं होती और अपने विषय की कृपणता के बारे में भी केवल आभास की सम्भावना बहुधा होती है।

लड़कियों के विषय में आदर्श अखंड ब्रह्मचर्य का है। उसी में आदर्श विवाह समाविष्ट है। विवाह की शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं होती। वह सम्बन्ध देहधारियों के स्वभाव में ही है। इस स्वभाव को किसी नियम में रखने के लिए विवाह-विधि बनाई गई। इस स्वभाव पर पूरा अंकुश अर्थात् ब्रह्मचर्य। जो पूरा अंकुश पालन करेगा वह विवाह रूपी सीमित अंकुश का पालन करेगा ही। किन्तु जिसका पहले से ही विवाह ही आदर्श है उसे विवाह का स्वरूप भी समझ में नहीं आता। विकारों के लिए शिक्षा की क्या आवश्यकता? वे अपने आप ही बाहर निकलते रहते हैं। किन्तु जो ब्रह्म-

चारिणी है उसे गृह की व्यवस्था करने का ज्ञान प्राप्त करना ही होगा। शिशु-पालन का ज्ञान लेना ही पड़ेगा। एकाकी, गुफा में जाकर बैठी हुई है, उसे कुमारिका नहीं कहा जा सकता। कुमारिका समस्त संसार से विवाह करती है; सारे संसार की माता बनती है। पुत्री बनती है। सारे संसार का कारबार चलाने लायक बनती है। ऐसी कोई कुमारिका शायद आज तक उत्पन्न नहीं हुई होगी। किन्तु आदर्श यही है। अतः सभी की शिक्षा एक ही होगी। अब मैं समझता हूँ कि मैंने पर्याप्त स्पष्ट कर दिया है।

उस मुसलमान बहिन के विषय में क्या कर्तव्य है वह इसी में से स्पष्ट होना चाहिए। लड़कियों के 'फिट' वगैरा का कारण अपनी अपूर्णता है। हम, थोड़ा ही क्यों न हो, आवश्यक उतना आगे बढ़ें तो तरुणों का अस्तित्व भयानक मालूम न होगा। किन्तु जहाँ धोखा मालूम हो वहाँ तरुणों को हटा देना चाहिए। मेरा सम्पूर्ण विश्वास ० ० ० पर है। मेरी कल्पना में ० ० ० वे ही यदि आश्रम के मन्त्री हों तो सब कुशल है। उनके विषय में मेरी श्रद्धा बढ़ती जा रही है। वे हटे तो दूसरे पुराने आश्रमी हैं। वे आगे आयेंगे। कुल मिलाकर सब कुछ ठीक होगा। आश्रम में आदमी बहुत हैं किन्तु आश्रमी कम हैं, इसीलिए श्रम मालूम होता है। ऐसी बहुत-सी अपूर्ण परिस्थिति में तुम सब हो सके उतना करके मुक्त हो जाओ। आश्रम मुझे नापने का गज है। मैं चाहे जहाँ होऊँ आश्रम को लेकर घूमता हूँ। देह कहीं भी हो, आत्मा वहीं निवास करती है। उसमें होने वाले सब दोष मुझमें दृष्ट अथवा अदृष्ट रूप से वास करते ही होंगे। तुम सबको पहिचानने में मेरी गलती हुई हो तो दोष मेरा नहीं तो किसका ? किन्तु यदि मैं अपने को ही पहचानता न होऊँ तो तुम सबका न्यायकर्ता कैसे बनूँ ? नाम गिनने बैठता हूँ तो दिखाई देता है कि छगनलाल और मगनलाल के सिवा औरों को मैं ढूँढ़ने नहीं गया था; उन्हें ईश्वर ने मेरी परीक्षा करने के लिए अथवा मेरी मदद करने के लिए भेजा है।

ता०—१३—२—३३ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—५६]

आश्रम और डाक्टर

चि०—, अब आज लम्बा पत्र नहीं लिखता………। एक अंग्रेज़ सज्जन को भेजा है। उनसे ठीक परिचय कर लो। मुझे वे त्यागी दिखाई देते हैं। उन्हें क्या चाहिए क्या नहीं, इसकी चिन्ता करो।………। डाक्टरों के बारे में समझ गया। एक बार उनके हाथ में जाने पर जो प्राप्त करना हो प्राप्त कर लेना चाहिए। वैसा न किया तो उनके प्रति न्याय न होगा और अपना नुकसान होने की सम्भावना रहेगी। कुछ काम उनसे अच्छे बनते हैं, यह मंजूर करना चाहिए। बाकी ध्यान न देने के कारण अज्ञान में वे अनेक गलतियाँ करते हैं, यह तो संसार-प्रसिद्ध है। उनकी मदद नहीं ही लेना, ऐसी किसी ने प्रतिज्ञा की तो मैं उसका अवश्य आदर करूँगा। करोड़ों लोगों को तो उनकी मदद मिलती ही नहीं। किन्तु यह त्याग आश्रम की शक्ति के बाहर है, ऐसा मेरा मत है। इसीलिए अच्छे डाक्टरों की मदद हम लेते हैं।

ता०—१६—२—३२ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—५७]

आश्रम और मैं

चि०—, तूने अपनी बनाई हुई जो पूनियाँ भेजीं उनसे मैं ७५ नम्बर के आगे बढ़ न सका। ७५ नम्बर का सूत बहुत कच्चा कहा जाता है। तूने जो तौल दी है उसी से नम्बर निकाला है। यहाँ की तराज़ू पर बारीक तौल नहीं निकलती। मेरा हाथ यदि ठीक चलेगा तो १०० नम्बर तक जा सकूँगा, ऐसा मुझे मालूम होता है।

कच्चा शाक और खजूर से तो वजन घटना ही चाहिए। उनके बराबर रोज़ ढाई तोला ताज़ा कच्चा दूध लेना चाहिए। कच्चे शाक में टमाटर, मूली,

गाजर या लेटिस ऐसी चीजें चाहिएँ । नमक न लिया जाय । दो-तीन नीबू पानी के साथ या खजूर के साथ खाने चाहिएँ। अलग निचोड़कर पानी के साथ ही पीना शायद अधिक अच्छा होगा । उससे दाँत खट्टा जायँ तो न खाये जायँ तब नीबू के रस में सोडा डालकर लेना चाहिए।

आश्रम की त्रुटियाँ जितनी तू बतायेगी, स्वीकार करूँगा । किन्तु उसके साथ ही यदि तू उपाय खोज कर लिखेगी तो अधिक उपयोगी होगा। खोजते न बने तो भी तेरी आलोचना मुझे चाहिए ही । मेरी अकल जितनी चलती है उतनी मैं चलाता हूँ । मुझे इतना मालूम है कि आश्रम की त्रुटियाँ आश्रम की नहीं, मेरी हैं। कुम्हार ने मटका बेडौल बनाया तो दोष मटके का या कुम्हार का ? यह उपमा मैं शत प्रतिशत सच मानता हूँ और उसके कारण मुझे मेरी मूर्खता की नाप मालूम होती है । किन्तु त्रुटियां हों तो भी आश्रम मुझे अच्छा लगता है। क्योंकि मैं खुद अपने को अच्छा नहीं लगता, यह कहने के लिए तैयार नहीं हूँ । जितने अंशों में 'मैं' (अहंभाव) नहीं हूँ उतने अंशों में मैं अपने को अच्छा लगता हूँ । और जितने अंशों में है उसे नष्ट करने का सतत प्रयत्न कर रहा हूँ।

ता०—६—३—३३ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

[पत्र—५८]

स्त्रियों का ब्रह्मचर्य

चि०—, तेरा सुन्दर पत्र मिला। यह भावना तुझमें स्थिर हो। ० ० ० को मैंने तेरे लिए सूत रखने को कह दिया है । वह रखखूँगा । वह माँग तिरस्कृत करने की कोई आवश्यकता नहीं । मेरे पास चाहे जो माँगने का तुझको अधिकार है। सूत की माँग शुद्ध है। जिस पद्धति से माँग की गई उसमें दोष था, वह तू ने सुधार लिया तो अब कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रही।

तू देखती ही है कि मेरी आशाएँ मिट्टी हो चली हैं। ० ० ० क्या और ० ० ० क्या ? उनके बारे में मुझे कोई भी सन्देह न होता। उनपर मैंने आशाओं का पहाड़ बनाया था। किन्तु उसकी नींव बालू की थी। आश्रम का आदर्श कैसे सिद्ध होगा। कोई किसी की आलोचना न करते हुए स्वतन्त्र प्रयत्न करेगा तो वह सिद्ध हो जायगा। क्या तू ऐसा प्रयत्न करेगी ? मेरी ब्रह्मचर्य की व्याख्या तुझे मालूम है न ? वह पूरी करेगी ? उसमें राग-द्वेष को स्थान ही नहीं। मुझे तेरी आलोचना नहीं करनी है। तुझे उपदेश भी करना नहीं है। मैं केवल अपनी भिक्षा माँग रहा हूँ। जबतक यह भिक्षा-पात्र भरेगा नहीं तब तक आश्रम ऐसा आमत्र न हो सकेगा।··· ······

········· वहाँ आश्रम में बहुत सी महाराष्ट्र बहिनें हैं। जमनालालजी ने उन्हें वहाँ भेजा है, ऐसा वे कहते थे। उनमें से एकाध को तुम्हें उनके महिलाश्रम के लिए तैयार करना चाहिए, ऐसा जमनालाल जी का तुमको सन्देश है। ऐसी कोई है क्या ? प्रौढ़ होनी चाहिए। मुझे लिखो।

श्वेत पत्र (White Paper) के बारे में मैं कुछ कह नहीं सकता। यहाँ हूँ, तब तक वह मेरा क्षेत्र ही नहीं अतः मैंने वह पढ़ा भी नहीं है।

ता०—२६—३—३३ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—५६]

नम्रता

चि०—, ० ० के बारे में तूने लिखा, वह अर्द्ध-सत्य है। गलतियाँ सबसे होती हैं। उसका दुःख न मानना चाहिए। किन्तु गलती करने वाले ने गलती छिपाकर रखी और वह अनिच्छया प्रगट हो ही गई तो फिर अपनी अनुचित सफाई देने लगना, ऐसा हुआ तो दुःख मालूम ही होना चाहिए। यदि दुःख मालूम न हुआ तो ऐसी घटनाओं को बन्द करने का उपाय ही न मालूम होगा। ऐसी बातें होंगी ही। तो उन्हें रोकने का प्रयत्न ही किसलिए करना ? ऐसा विचार किया तो समाज का नाश ही होगा। अतः ऐसी बातें रोकने के लिए उपाय-योजना करनी ही

चाहिए। ऐसे उपाय करने से चोटे लगे तो भी करने चाहिएँ। जो मिथ्या दुःख करता है, क्रोध करता है, वह ठीक नहीं, ऐसा कहा जा सकता है और तुझे भी मैं समझता हूँ, इतना ही कहना है। इससे अधिक कुछ तुझे कहना हो तो वह गलती है। इसमें मुझे सन्देह नहीं है। दुःख, आघात इत्यादि शब्दों के बजाय दूसरे शब्द मिलें तो मैं अवश्य उन्हें मान लूँगा। किन्तु तेरे पत्र में कहीं तो मोह छिपा हुआ है। 'मोह' शब्द ठीक उपयोग में लाया गया है या नहीं, यह मैं नहीं बता सकता। मेरा आशय तेरी समझ में आ जाय बस..........

तुझसे मुझे चाहिए सरलता, मृदुता, नम्रता, धीरता, सहनशीलता, उदारता। तू आसमान से उतरेगी तभी मुझे यह मिलेगा। 'हम कुछ नहीं हैं' ऐसा तू कब मानने लगेगी। रोज़ पृथ्वी माता की वन्दना करना और रोज़ उसे लात मारना, यह क्या है? यदि सचमुच अपनी इस *प्रार्थना में सत्य हो तो हमें रज-कण बनना चाहिए और संसार की लात सहन करना सीखना चाहिए जिससे पृथ्वी माता को अपने चरणों का स्पर्श न हो। क्योंकि तब जीवित रहते हुए भी हम धूल हो जाते हैं। 'दुई की धूल उड़ाता जा।"

परचुरे शास्त्री के लड़के की ज़िम्मेदारी ली, ठीक किया। ....

तेरी पूनियाँ अब भी चल रही है। उनमें गाँठें रह गई हैं। वह दोष तेरा नहीं, कुछ अंशों में धुनाई का है और कुछ रुई का है। अधिक धुनी होती तो रुई के तन्तु कमजोर हो जाते। दूसरी पूनियाँ बहुत पतला सूत नहीं देतीं, किन्तु उनमें गाँठे कम हैं।

ता०—२—४—३३ बापू के आशीर्वाद

यरवडा मन्दिर

---

* समुद्रवसने देवी पर्वतस्तन मंडले,
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्य पादस्पर्शं क्षमस्व मे।

[प्रातःप्रार्थना, आश्रम-भजनावली]

[पत्र—६०]

ब्रह्मचर्य का अभिमान : ब्रह्मचारी का आश्रय ईश्वर है

चि०—, तेरा पत्र मिला । लिखा तो लिखा—अच्छा है । आज विस्तार से लिखने लायक नहीं है। तेरा पत्र अच्छा है फिर भी उसमें ब्रह्मचारिणी को न शोभित होने वाला अभिमान है। नारद की कथा स्मरण रखो । नारद ने ज्योंही ब्रह्मचर्य का अभिमान किया कि गिरे। ब्रह्मचारी का आधार सीधा ईश्वर होता है अतः उसे नम्र होना चाहिए। खुद का विश्वास न करो। जो जन्मतः निर्विकार है वह मनुष्य नहीं। वह या तो ईश्वर है या पुरुष वा स्त्री-शक्ति-रहित है—अर्थात् अपूर्ण है, रोगी है । परमेश्वर को अभिमान किस बात का ? पत्थर को क्या पत्थरपन का अभिमान होता है ? रोगी को रोग का अभिमान न होना चाहिए। स्त्री-पुरुष अपने विकार संयमित रखने की शक्ति प्राप्त कर सकते हैं, और संग्रहीत हुई शक्ति का वे सदुपयोग कर सकते हैं। किन्तु जिसे इस शक्ति का अभिमान उत्पन्न हुआ उसकी शक्ति का उसी क्षण नाश हो जाता है। तुझमें जो ब्रह्मचर्य है उसका कितना क्षय हो रहा है, तुझे क्या मालूम ? तेरे ब्रह्मचर्य में न्यूनता तो अवश्य है ही। तुझमें स्वाभाविक क्या है ? तुझे विकार मालूम ही न हों तो तू क्या देवी है ? देवी के लक्षण अलग ही होते हैं। तू देवी नहीं है। तुझे रोग है, ऐसा भी मुझे नहीं मालूम होता। तू खुद की जाँच कर और मुझे लिख।

ता०—२—४—३१ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—६१]

अहंकार : शरीर-रक्षा : क्रोध भी व्याधि है

चि०—, तेरा पत्र मिला। मैंने तुझे धोखे की सूचना दी, इतना बस है। तू समझती है कि मैं तेरे पत्र ठीक पढ़ता नहीं। किन्तु यह गलत है। तेरे लिखने का आशय मैंने ठीक समझा था। तेरे इतने आत्म-विश्वास में

ही अभिमान या चाहे उसे गर्व कहो, भरा हुआ है। तेरा अभिमान तेरी भाषा में ही दिखाई देता है। किन्तु उससे मैं कुछ ऐसी इच्छा नहीं करता कि तू अपने विचारों को छिपाये और भली भाँति सजाकर मेरे सामने रखे। जैसे (विचार) आते हैं वैसे तू मुझे भेजती है, यह मुझे पसन्द है। तू भीतर-बाहर जैसी है, वैसी मुझे देखने देती है, यह मैं तेरा गुण समझता हूँ। तू कृत्रिम बनी तो मैं लाचार हो जाऊँगा और तुझे कुछ भी बता न सकूँगा।

तकलीफ की मुझे आदत हो गयी है। ईश्वर मेरी परीक्षा अनेक तरह से ले रहा है। आदत हुए बिना मनुष्य बनेगा कैसे। तू कर्तव्य-पालन नहीं कर रही है, ऐसा मुझे अवश्य मालूम होता है। पहले से ही गले को विश्राम देने के लिए लिखा था। शरीर को भी विश्राम देने के लिए लिखा था। पर तू दोनों आज्ञाओं का अनादर कर रही है। ये आज्ञाएँ तुझे देने में तेरा स्वार्थ नहीं, आश्रम का है। तेरा गला हमेशा के लिए बिगड़ गया, शरीर खराब हो गया, तो तेरा नुकसान जो होगा उससे आश्रम का अधिक होगा। यह सीधा-सादा सत्य तेरी समझ में आता है? यदि समझती है तो विनम्र होकर शरीर स्वस्थ रखने के लिए जो बताया जाय वह करते जाना। वही बात क्रोध के बारे में। वह भी एक व्याधि है। उसे भी दूर कर। अधीरता भी दूर कर।

ता०—१०—४—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—६२]

मासिक धर्म

चि०—,...रज-कण होने का पाठ मैं नहीं दे सकता। ईश्वर को जानने पर मनुष्य अपने आप रज-कण हो जाता है। वह साध्य अपने रास्ते जब आना होगा तभी आयेगा।

....तू समझती है कि मेरे आसपास तेरे विरुद्ध वातावरण एकत्र हुआ है। किन्तु यह गलत है।.. ....० ० ने तेरे बारे में जो बताया वह नया

नहीं। वे तेरा मूल्य जानते हैं, किन्तु कहते हैं कि तू अपनी जीभ को लगाम न लगायेगी, तब तक तुझ पर जिम्मेदारी न छोड़नी चाहिए। यह उनका पुराना कथन है। मैं अपने * तीनों साथियों के साथ शायद ही कभी बातें करता हूँ, यह तू ध्यान में रख। खाते समय या घूमते समय कुछ हँसी-मजाक के सिवा दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता। विशेष प्रसंग को छोड़कर हम शायद ही किसी व्यक्ति के बारे में चर्चा करते हैं। व्यर्थ की चर्चा कर मैं अपनी शक्ति का व्यय भी नहीं करना चाहता। ..तेरे विरुद्ध वातावरण मेरे आसपास भी नहीं और मेरे मन में भी नहीं। मैं तुझे कभी फटकार देता हूँ वह मैं तुझे अपनी लड़की मानता हूँ और तू पूर्ण हो जा ऐसी मेरी इच्छा है, इसलिए। मेरी आलोचना से तू दुखी क्यों होती है? उसमें जो लेने लायक हो वह लेकर बाकी भूल जाना। क्योंकि मेरी आलोचना में कदाचित् अज्ञान होगा। तेरी भाषा कदाचित् मेरी समझ में न आई होगी। ऐसा होने की भी बड़ी सम्भावना है।

एक ही वस्तु विभिन्न मनुष्य अलग-अलग ढंग से देखते हैं, यह ठीक है। एक ही शक्ति का उपयोग अलग-अलग ढंग से होता है, यह हम प्रति-दिन देखते रहते हैं।

(स्त्रियों के) मासिक धर्म के समय किसी को भी नियत कार्य नहीं सौंपना चाहिए, ऐसा मुझे जान पड़ता है। उनका दुःख कब उत्पन्न होगा, यह दूसरे किसी की समझ में न आयेगा। उस समय स्त्री पर किसी प्रकार का बाहरी बोझ न होना चाहिए, यह इष्ट है। उनका मन जिस काम में लगे उसे वे सुख से करें। कितनी ही स्त्रियों को मासिक धर्म का परिणाम मालूम ही नहीं होता। और वे अपना काम चालू रखती हैं। बहुतों को असह्य वेदना होती है। कितनों को वेदना नहीं होती किन्तु शरीर काम करने लायक नहीं रहता। जिसे इस धर्म का सदुपयोग करते बनता है वह हर महीने नई शक्ति प्राप्त करती है। ये तीन या चार दिन नई शक्ति प्राप्त करने

* सरदार वल्लभभाई महादेव भाई और छगनलाल जोशी

के होते हैं। और उसे प्राप्त करने के लिए स्त्री को प्रत्येक जिम्मेदारी से मुक्त रखना इष्ट है। उसे सोने की इच्छा हुई तो उसे वैसा करने की छूट चाहिए। नासमझी के कारण बहुत सी स्त्रियाँ उस समय भी दौड़-धूप नहीं छोड़तीं। वे ज्ञानहीन हैं। उन्हें समझा देने की आवश्यकता है.... ।

ता०—१२—४—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—६३]

शिष्य—शिक्षक

चि०—, तू ने उस लड़की को भला क्यों मारा? शिक्षिका ने शिष्य से यदि क्षमा माँगी तो उसका स्वाभिमान कुछ कम नहीं होता बल्कि बढ़ता है। शिष्य भी उसे अधिक चाहने लगते हैं। अतः तूने यदि क्षमा न माँगी हो और तूने जो मारा वह यदि तुझे दोष मालूम होता हो तो तू उस लड़की से क्षमा माँग। उसमें तेरा कल्याण ही है ......।

काम करने में अधीरता किस बात की? जितना धीरे-धीरे करती जाओगी उतने में सन्तुष्ट रहने से काम की गति और सफाई बढ़ती है। यह मेरा हजारों बार का अनुभव है।

ता०—१७—४—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—६४]

सुधारक : नीला नागिनी

चि०—, दाहिना हाथ बहुत थक गया अतः जो शक्ति बची हो वह 'हरिजन' के लेख के लिए बचा रखने की इच्छा है। मैं समझता हूँ कि पूर्ण विश्रान्ति लेने की आवश्यकता न होगी।

.....० ० थोड़ा तंग करेगी। उसे यदि सुधारना हो, तो केवल सहन करने और प्रेम से ही सुधर सकेगी। उसे माँ न होने का अनुभव न होने

दो। . अपना धीरज न छूटने दो। सुधारक का—सेवक का—धीरज के बिना क्षण-मात्र भी नहीं चल सकता, यह याद रखो। अपनी दीवार पर लिख रखो। उसका यंत्र बनाकर गले में पहनो।

वहाँ से आज्ञा मिली कि नीला नागिनी वहाँ थोड़े ही दिनों में आयेगी। उसने खुल्लमखुल्ला व्यभिचार किया है। कर्ज लिया है, झूठ बोली है। आज वह साध्वी बन बैठी है। मुझे उसमें कृत्रिमता नहीं मालूम हुई। उसे अपने दोषों का दर्शन होने पर जितना मैंने उसे बताया उतना उसने किया है। यदि उसे उसके शुभ निश्चयों के अनुसार कहीं रह सकने का अवसर हो तो वह वहाँ (आश्रम में ही) मिलेगा। और दूसरी किसी भी जगह वह सूख जायगी या फिर स्वैराचारी बन जायगी। उसकी शक्ति बहुत है; उसे जानकारी बहुत है। महाभारत से उसका अच्छा परिचय है। वह आवे तो उस से परिचय कर लो, और बहिनों से उसका परिचय करा दो। उसके भूतकाल की बातें उससे निकालने में मत लगाओ। वह उन्हें निकालेगी। किन्तु उसकी बातें निकलवाने में दोष है। विषय का स्मरण हानिकारक है। अपने बारे में भूतकाल की बातें वह प्रेम से बताने लगे, तो समझना चाहिए कि उसमें से उसका उच्चाटन हुआ नहीं है। उसे अपनी छोटी बहिन समझ कर प्रेम के साथ रोकती जा। उसके जीवन के बारे में जो कुछ पूछना हो वह मुझसे पूछ। उसे आश्रम में भेजने का समय आयगा तब विस्तृत लिखने के लिए मुझे समय न मिलेगा, इसलिए आज ही इतना लिखा है। उसका लड़का बहुत भला है।

ता०—२३—४—३३ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—६५]

गजेन्द्र-गति : प्रभु-शरणागति

चि०—, तुझे बीच में एक पत्र लिखा ही है। वायुमंडल बहुत अस्थिर हो चला है। उसमें तेरे विचार बारबार आते रहते हैं। तुझे सीख

देने की इच्छा नहीं होती और तेरे साथ बहस करने की शक्ति नहीं रही। मेरी स्थिति गजेन्द्र की तरह है। थोड़ी सी सूँड बाकी रही है। वह पानी में डूबी कि श्वास रुक जायगा। अतः जिनके बारे में आज मन में विचार आते हैं उनके लिए प्रार्थना ही करना बाकी है। किन्तु प्रार्थना किससे करूँ? जो निरन्तर जाग्रत है, जिसे जरा भी आलस्य नहीं, जो नाखून से भी अधिक निकट है, जो सब कुछ सुनता है, जिसे सब कुछ दिखाई देता है, वह तो मेरी प्रार्थना जानता ही है।

अतः उसी के बल पर थोड़ी-सी सूँड पानी के बाहर रही है। उसे जैसा करना हो वैसा करेगा। रखना होगा वैसे रखेगा।

ता०—२६—४—३३   बापू के आशीर्वाद

[पत्र—६६]

प्रार्थना : ज़रूरी कार्य : लोकाचार : श्रद्धा और अन्तःप्रेरणा

चि०—, मेरा उपवास सभी आश्रम-वासियों के लिए होगा। अर्थात् तेरे लिए भी होगा। यह समझकर तुझे जो रोग हों उन सबको निकाल डाल।

तेरे प्रश्न तेरे पास हैं, ऐसा समझ कर केवल उनके उत्तर ही संक्षेप में दे रहा हूँ। आज मुझे समय की बहुत तंगी है।

(१) छोटे बड़े कोई भी हों उन्हें नम्रता से समझाते न बना तो मौन धारण कर हृदय से उनके लिए प्रार्थना करना। ऐसा करने से उतावलापन समाप्त हो जायगा।

(२) यहाँ 'जरूरी' की परिभाषा समझ लेनी चाहिए। मैं श्लोक बता रहा हूँ और मुझे साँप दिखाई दिया, उसे पकड़ना जरूरी है तो मुझे श्लोक बताने के नियम का भंग करना चाहिए। उसी समय शौच की आवश्यकता प्रतीत हुई तो भी उसका भंग करना चाहिए। मुझे प्यास लगी तो उसे अवश्य दबाकर श्लोक चलाने चाहिएँ। और यदि गले में कुछ हुआ हो तो भी श्लोक चालू रखें तो वैसा करने में पागलपन से भी अधिक गम्भीर दोष होगा।

(३) सत्य के शोध में जो लोकाचार अड़चन डाले उसे तोड़ डालना चाहिए।

(४) यदि तुझे मेरे विषय में अनन्य श्रद्धा हो तो तुझे समझना चाहिए कि तू जिसे अन्त प्रेरणा समझती है वह गलत होने की सम्भावना है। किन्तु अन्तःप्रेरणा श्रद्धा के भी आगे जाती हो तो चाहे जो संकट आवे मानना चाहिए।

(५) इसका उत्तर एकांगी नहीं होता।

(६) यह प्रश्न मेरी समझ में नहीं आया।

(७) हमें कोई झूठा और आलसी है ऐसा बारम्बार दिखाई दिया तो उसके वैसे होने का सन्देह सत्यार्थी मनुष्य के मन में भी आ सकेगा। किन्तु सत्यार्थी मनुष्य सन्देह होने पर भी आलस्य अथवा झुठाई करने वाले पर प्रेम रखता है और उसे अवसर देता रहता है।

(८) इस सम्बन्ध में सभी के लिए एक ही नियम नहीं रह सकता। प्रत्येक के मन पर यह अवलम्बित है। किन्तु कला का बहाना कर सादगी का त्याग नहीं करना चाहिए।

(९) उलटा 'जबाब-सवाल' करना ही निन्द्य है। 'तू भी वैसा ही' ऐसा कहना छोटापन है।

(१०) अहिंसा के गर्भ में ही यह वस्तु है।

तेरे पास तेरे प्रश्नों की नकल कर रखने के लिए समय न होगा, ऐसा समझ कर उन्हें इस पत्र के साथ ही भेज रहा हूँ।

दो बहिनों को भेज तो रहा हूँ। बहुत संकोच मालूम होता है, किन्तु भेजने का धर्म है, ऐसा समझ कर भेज रहा हूँ। आशा है कि वे तेरा काम न बढ़ायेंगी बल्कि तेरे काम आयेंगी। उनकी हिन्दी सीखने की व्यवस्था कर दे।

सुशीला इस बार की अपनी छुट्टी आश्रम में बिताये, ऐसी मेरी इच्छा है। तुम दोनों को उससे विश्राम मिलने की सम्भावना है। उद्योग का परिवर्तन ही विश्राम है, यह अंग्रेजी कहावत तुझे मालूम है न? इसमें बहुत सत्य है।

लिखते-लिखते सहज सूझा हुआ यह विचार है, ऐसा समझना। सुशीला ने कोई अलग कार्यक्रम तय किया हो तो वह मेरी इच्छा के लिए रद करना चाहिए, ऐसा बिल्कुल नहीं।

ता०—१—५—३३ बापू के आशीर्वाद

पूर्तिका :

उपर्युक्त पत्र में जिन प्रश्नों की चर्चा है वे ये हैं :—

(१) अपने से बड़ा, अपने बराबर अथवा अपने से छोटा कोई भी व्यक्ति बहुत शोर मचाता हो, उलटा जवाब देता हो, अपशब्द बोलता हो, समझाने पर भी न समझता हो और इन बातों का परिणाम औरों पर बुरा होता हो, काम और समय खराब होता हो तो मनुष्य को क्या करना चाहिए। अपनी Impatience (अधीरता) कैसे जीती जाय ?

(२) अपना कर्तव्य करते हुए किसी आवश्यकता से आश्रम के नियम का अथवा अनुशासन का भंग हो गया, तो उसका औरों पर क्या परिणाम होगा। बुरा परिणाम होने लायक हो तो अपनी जरूरी बातों का त्याग करना चाहिए या नहीं ?

(३) सत्याग्रह के मार्ग में लोकाचार की कीमत कहाँ तक करनी चाहिए।

(४) आप के समान पुण्यश्लोक आदमियों में और मुझ में किसी विशेष बात में मतभेद हो और मेरा मत मुझे अन्दर से सच मालूम होता हो और उसके बारे में आपकी संस्था के आचार-धर्म की हानि होती हो तो सत्याग्रही के नाते मुझे क्या करना उचित है।

(५) संस्था के लिए व्यक्ति प्रिय या व्यक्ति के कारण संस्था प्रिय होनी चाहिए ?

(६) दूसरों के बारे में अपने मन में बुरे विचार आते हैं तो उन्हें जानने की मर्यादा क्या ?

(७) किसी का झूठापन या स्वार्थीपन कई बातों से हमें मालूम हो

जाने के कारण उस व्यक्ति के बारे में फिर किसी चीज में हमें संशय आया तो वह सत्याग्रही के लिए अच्छा मालूम होगा या नहीं।

(८) सादगी से जीवन बिताया तो उसकी मर्यादा कहाँ तक हो सकती है। साड़ी पर बेल-बूटी छापना, फैशनेबुल कुर्ता पहनना, सिर में या गले में फूल पहनना, नक्शीदार चप्पल पहनना आदि-आदि बातों में कला-भिज्ञता समझना या आश्रम के तत्त्वों की हत्या हुई समझना ?

(९) आश्रम में एक मनुष्य दूसरे की आलोचना करता हो और वही दोष वह खुद करता हो अथवा उसने किया हो तो जिसकी आलोचना की उस व्यक्ति ने आलाचक को बुरा-भला कहा और उसके दोष दिखाये तो उसे निन्द्य अथवा हिंसा कहा जा सकता है ?

(१०) आश्रम में आने वाले सब लोग विभिन्न हेतु मन में लेकर आते हैं। तो प्रत्येक के यहाँ के जीवन को अपनी दृष्टि से अलग-अलग रीति से देखना चाहिए क्या ?

[पत्र—६७]

प्रतिक्षण घटती आयु : समय का सदुपयोग

चि०—, तेरे पत्र से मेरे पत्र की बीच में टक्कर हुई-सी मुझे मालूम होती है। मैंने कल पत्र लिखा और तूने भी कल ही। हम सबके वर्ष एक के पीछे एक बढ़ते जा रहे हैं। हम छोटे होते जा रहे हैं, यह कहना कदाचित् अधिक ठीक होगा। है न ? जितने साल जाते हैं उतने आयु से कम हुए। उतने अंशों में हम छोटे ही हुए, ऐसा कहना चाहिए। इससे मुझे यह तात्पर्य निकालना है कि हमें अधिकाधिक सावधान होना चाहिए। हमें सौंपी गई पूँजी कम होती जा रही है। जो बाकी है उसका पूरा उपयोग करना सीखें। तेरे बारे में यही सिद्ध हो, ऐसी मेरी इच्छा है।

ता० १—७—३२ बापू के आशीर्वाद

[पत्र – ६८]

सत्याग्रह स्थगित

चि०—, ...आज लिखता हूँ उसके दो कारण हैं। एक तो ० ० ० प्रेरणा करती है और दूसरा उसकी दी हुई खबर। मेरा निर्णय* सुनकर तू तीन दिन रोई ? मैं समझता था कि यह निर्णय सुनकर तुझ पर आघात होगा। किन्तु उसी के साथ तू नाचने लगेगी, गाने लगेगी। क्योंकि उसका रहस्य, महत्व और शुद्ध सत्य समझे बिना नहीं रह सकेगी। अनुभव से उसकी योग्यता रोज़-बरोज़ सिद्ध हो रही है। इसमें सहकारियों की अयोग्यता का प्रश्न नहीं। अयोग्य कोई भी नहीं निकला। किन्तु जो प्रकट हुआ वह सूचक था। उसने मुझे यह निर्णय करने की प्रेरणा दी। समय आते ही—और समय आयेगा ही—ये ही सहकारी लड़ेंगे। प्रश्न अधिक शक्ति प्राप्त करने का, अधिक संयम की आवश्यकता का था। मेरे हथियार आज काम नहीं आये, इस कारण वे कुछ अयोग्य नहीं है। उन्हें अधिक पानी देने की (तेज़ करने की) आवश्यकता होगी; उनका उपयोग असमय हुआ होगा। इससे अधिक समझाया नहीं जा सकता। तू छूटने पर सीधे मुझे खोज निकाल और पेट भरकर मुझसे लड़ ले और समझ ले। इस निर्णय के पीछे सबकी कसौटी है। किन्तु ईश्वर की कृपा से हम सब उसमें से पार हो जायँगे।

यह पत्र पटना जाते समय गाड़ी में लिखा है। किन्तु ई० आई० रेलवे इतनी सीधी चलती है कि उसमें लिखने में अड़चन नहीं होती।

ता०—१७—५—३४ बापू के आशीर्वाद

---

* सत्याग्रह का आन्दोलन स्थगित करने का निश्चय

[पत्र—६६]

थोड़ा किन्तु भलीभाँति किया कर्म

चि०—, तेरा पत्र मिला। आज भी तड़के की प्रार्थना के पूर्व यह पत्र लिख रहा हूँ। यह कुछ तुझपर मेहरबानी कर नहीं लिखता। इतना ही दिखाने के लिए लिखा है कि अब नियम के अनुसार तड़के तीन बजे उठकर काम में लग जाता हूँ। सारे दिन भर में पत्र लिखने के लिए मुझे बहुत कम फुर्सत मिलती है। मुझे कोई उठाता नहीं और एलार्म भी नहीं है। यहाँ सोने के लिए छत है।

ऐसा दिखाई देता है कि तू व्यवसाय बढ़ा रही है। कम करना चाहिए किन्तु पक्का करना चाहिए, ऐसी मेरी सलाह है। देहातों के काम में जल्दबाजी अच्छी नहीं। 'हरिजन' अथवा 'हरिजन बन्धु' नियम से पढ़ती जाना। उसमें आजकल और विषयों की भी चर्चा रहती है .....।

...गीताई की कापी चाहिए तो भेजूँगा। मेरे निवेदन* से कुछ विचार सूझें हों तो लिख...।

ता०—२०—६—३४ बापू के आशीर्वाद
वर्धा

[पत्र—७०]

नाम नहीं काम : ग्रामीण कार्य

चि०—, तेरा पत्र वर्णनों से भरा हुआ है। जान पड़ता है, काम अच्छा चला है। इसी तरह हिसाब भेजती जाना।

देहात में काम करने के बारे में 'हरिजन' में लिखा है। वह देखो। सब जगह एक ही पद्धति से काम नहीं चल सकता। यह बिना गोड़ा हुआ

---

* महात्मा जी ने कांग्रेस से अपने को अलग कर लिया था, उस समय का निवेदन।

खेत है। अतः काम में बहुत विविधता होने की सम्भावना है। मेरे पास जो योजना है और जो मैंने 'हरिजन' में दी है, वह केवल एक ही तरह की है। किन्तु उसका घूँट किसे पिलाऊँ? तुझी को न? तू अब कितनों को पिलाती है देखें। तेरी अड़चनों का मुझे आश्चर्य मालूम नहीं होता। मेरी सलाह है कि तू कांग्रेस का नाम भी न ले। सविनय भंग की बात तो दूर रही। आज तू जो-जो काम करती है उसके गुण-दोष ग्रामवासियों को बताना चाहिए। कांग्रेस के काम के सिवा नाम अनावश्यक है। जो 'कृष्ण-कृष्ण' कहता है वह उसका पुजारी नहीं। रोटी-रोटी कहने से पेट नहीं भरता; खाने से ही भरता है।

तुझे मालूम हुआ वह ठीक है। गाँव छोड़ने की यदि आज्ञा होगी तो उसका आनन्द से पालन करना है। न अच्छे लगने वाले नियमों का भी जो इच्छा के साथ पालन करता है उसी को कभी-कभी नियम-भंग करने का अधिकार प्राप्त होता है। यह बात थोड़े लोगों के ही ध्यान में आती है।

मेरा कांग्रेस में आना होगा ही, ऐसा मानने की आवश्यकता नहीं। मन में बहुत-सी बातें पक रही हैं। उन सबको लिखने के लिए समय नहीं मिलता। जो हो, देखती रहो।

ऐसा कहा जा सकता है कि अम्तुल सलाम को लिखा गया तेरा (उर्दू) पत्र अच्छा है ....।

ता०—३—६ - ३४ बापू के आशीर्वाद

वर्धा, तड़के तीन बजे

[पत्र—७१]

आश्रम का बलिदान

चि०—, तेरा पत्र मिला। तेरी उदारता अपरंपार है। मैंने न लिखा तो भी चल जायगा, कहती है। किन्तु उदारता का उपयोग करने की आज तो मुझे इच्छा नहीं है। तो भी तुझे धन्यवाद देना ही चाहिए।

× × × ×

आश्रम की किसी ने निन्दा की तो मुझे उसका ज़रा भी दुःख नहीं मालूम होता। किन्तु मैंने आश्रम को भस्म किया, इसका कारण जो मैंने बताया उसे किसी ने न माना तो उससे मुझे दुःख अवश्य होता है। मैं जिसे पवित्र नहीं मानता उसका बलिदान क्या करूँगा? यह बात तूने बराबर समझा दी होगी। किन्तु अपना जो होगा वह प्रसन्न मन से सहन करना है। करें।

× × × ×

मेरी गाड़ी ठीक चल रही है। ताक़त आ रही है। लिखते जाना।

ता० २।—६—३४ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—७२]

फलों की खेती के प्रति दुर्लक्ष्य

चि०—, तू मेरा निवेदन पूर्णतः समझ सकी इसका मुझे सन्तोष है। तेरे काम का विकास हो रहा-सा दिखाई देता है। विस्तार मत बढ़ाना। हाथ में लिया है उसकी जड़ गहरी जमाओ। हमारे कंगले देश में हम घास का बीज लगाकर उस पर जीवन बिताते हैं। गेहूँ आदि घास का ही बीज है। फलों के पेड़ लगाने का हमें धैर्य ही नहीं होता। इससे वे गरीबों को मिलते ही नहीं। अमीरों को वे पोषक नहीं होते। वे मुख-शुद्धि के लिए खाते हैं। इसी प्रकार हम सेवा के क्षेत्र में भी कंगले होने के कारण घास पर ही सन्तुष्ट रह जाते हैं। इस गलती से हम ज़रा भी बच गये, तो उत्पन्न हुए फल के पेड़ छाया देंगे और उनके फल पुश्त दर पुश्त खाये जायँगे। आज इतना ही।

ता०—५—१०—३४ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—७३]

मेरा क्रोध : पर-निन्दा : व्यवसाय और सेवा : अहिंसा : अनासक्ति

चि०—, तेरा पत्र मिला। तेरे प्रश्नों का समझदारी से उत्तर दे दिया तो वह सच्ची समझदारी की निशानी होगी, ऐसा थोड़े ही कहा जा सकता है। मेरा क्रोध तुम किसी को मालूम नहीं हो सकता। उसका साक्षी (गवाह) मैं ही हो सकूँगा। ० ० ० अथवा ० ० ० बहिन को जो अनुभव आया हो उसकी गणना मैं क्रोध में थोड़े ही करूँगा। मुझ में जो क्रोध भरा हुआ है उसमें से बहुत-सा मैं पी ही जाता हूँ। पीते-पीते जो बाकी रहा उतना ही ० ० ० आदि को दिखाई दिया होगा। उतना भी यदि उन्हें देखने न दिया तो ढोंगी बन जाऊँगा या सूखकर हड्डियों का कंकाल बन जाऊँगा। वैसा नहीं होता, क्योंकि मैं अपने क्रोध को जान-बूझकर आगे का रास्ता चलता जाता हूँ। मेरे निकट रहने वालों के बारे में मुझे सावधान रहने की आवश्यकता दिखाई नहीं दी। इस कारण उन्हें मेरे क्रोध का अस्पष्ट दर्शन होता है और वे मुझ पर दया करते हैं इसलिए मेरा क्रोध भूल जाते हैं।

० ० ० के बारे में तू जैसा समझती है वैसा होने की संभावना बहुत ही कम है। किसी की निन्दा की बात पर विश्वास रखते समय बहुत विचार करना चाहिए। उसे सुना ही नहीं तो अधिक अच्छा।

० ० ० आदि के बारे में क्या होगा? उनके विचार अलग हैं, मनोरथ अलग। जो प्रवृत्तियाँ उन्हें पसन्द आती हैं उन्हें सरकार चलने नहीं देती। जो चलती होंगी उनमें उन्हें प्रेम नहीं मालूम होता। प्रजा के तन्त्र में वे ही आ सकते हैं जो कहीं न कहीं बैठ सकेंगे। उनके तरह के लोगों को किसी व्यवसाय में लगकर यथाशक्ति सेवा करना उचित है। इस प्रकार बहुतों को मैंने मार्ग दिखाया है। जो प्रामाणिकता से व्यवसाय कर रहे हैं वे भी देश की सेवा करते हैं। और सेवा करते हैं ऐसा कहने वाले भार-रूप हो सकते हैं। व्यवसाय कर कमाने वाले शुद्ध सेवक हो सकते हैं।

उद्योग के बारे में जो हो सकता हो वह कर……………।

एक ही क्षेत्र में जमकर रहते बनेगा तभी कुछ काम हो सकेगा। तू जहाँ रहती है वह यदि शहर का उपनगर ही हो तो वहाँ रहने से कोई लाभ नहीं। किन्तु अब वहाँ रह ही गई हो तो एकाएक वह स्थान न छोड़ना अच्छा। किन्तु इसमें मेरी अक्ल बेकार है, ऐसा समझना चाहिए। यदि गलती से वहाँ रहना तय किया हो तो उसी में चिपके रहना न्याय नहीं हो सकता। गलती हुई, ऐसा सिद्ध हुआ कि उसे सुधारना ही चाहिए।

अहिंसा के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करा देने वाला मैं कौन ? मुझमें यदि सच्ची अहिंसा वास करती होगी तो उसका संसर्ग दूसरे को हुए बिना रहेगा ही नहीं। मुझ पर मेरी श्रद्धा कम है। किन्तु अहिंसा पर अटूट है। संसार को यह एक महान् सिद्धान्त मालूम हुआ है। वह आचरण में बहुत कम आया है। मुझे तो प्रतिदिन उसकी नई मिठास चखने को मिलती है। मेरे बारे में वही एक कल्पवृक्ष है। इस संसार में मेरे लिए दूसरा कुछ नहीं हो सकता। क्योंकि सत्यनारायण से मिलने का मुझे दूसरा मार्ग मिला नहीं। और उसे मिले बिना जीवन व्यर्थ मालूम होता है। अतः अहिंसा का मार्ग विकट हो या सरल, मुझे उसी मार्ग से जाना है। मेरी मृत्यु के पश्चात् यदि मारकाट ही हुई तो समझना चाहिए कि मेरी अहिंसा संकुचित अथवा झूठी थी। अहिंसा का सिद्धान्त झूठा नहीं हो सकता। अथवा ऐसा भी हो सकता है कि अहिंसा तक हम पहुँचें उसके पहले हमें खून की वैतरणी पार करनी होगी। २० की राजनीति में अहिंसा प्रगट हुई। उसके बाद क्या चौरीचौरा इत्यादि नहीं हुए ? सरकार ने भी अपना हाथ कहाँ रोक रखा है ? किन्तु मुझे विश्वास है कि सब हिंसा होते हुए भी अहिंसा ने अपना बहुत प्रभाव डाला है। किन्तु वह समुद्र में बिन्दुमात्र है। मेरा प्रयोग आगे बढ़ ही रहा है। अपनी श्रद्धा कभी डिगने न दे। जो कुछ अपनी इन्द्रियों को दिखाई देता है वह सदा सत्य ही होता है, ऐसा नहीं। बहुत बार वे असत्य ही देखती हैं। इसीलिए अनासक्ति का मार्ग खोजा गया। अनासक्ति माने इन्द्रियों के परे होना। यह उनमें रही आसक्ति टूटी तभी साध्य होगा। आँखों का प्रमाण सच मानें तो पृथ्वी क्या सपाट (समतल) सिद्ध नहीं होगी और सूर्य सोने

के थाल के सिवा दूसरा क्या मालूम होगा ? आँखें देखती हैं वही तू होगी तो मेरा दिवाला ही निकलेगा। कानों से मेरे बारे में सुनती है वह सब सच समझ बैठी तो ?

अब बहुत हुआ। मीराबेन का अलार्म बजा। अब प्रार्थना की घंटी होगी। इतने से जो चित्र तुझे निकालते बने निकाल ले। पन्द्रह तारीख के बाद देहली जाने का विचार है। वहाँ थोड़े दिन हरिजन आश्रम में रहने को सोचा है। अन्त में अब जेल आँखों के सामने है।

ता०—४—१२—३४ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—७४]

स्वप्न के दोष : निराशा अश्रद्धा है : जीव मात्र की शुद्धतम सेवा

चि०—, ... आज भी तड़के १-४५ बजे उठकर पत्र लिख रहा हूँ। आजकल दो बजे के आसपास उठने की आदत ही हो गई है। नौ बजे के पहले सोने को मिलता है। दिन में एक दो बार मिलाकर आधे से एक घंटे तक सोने को मिलता है। काफ़ी हो जाता है ......।

.... स्वप्न में व्रतभंग हुआ तो उसका प्रायश्चित्त सामान्यत. अधिक सावधानी और जागृति आते ही रामनाम है। स्वप्न में होने वाले दोष अपनी अपूर्णता के प्रतीक हैं। बिना जाने ही क्यों न हो वे वे विषय अन्तःकरण के किसी कोने में भोगते रहते हैं। उससे निराश होने की आवश्यकता नहीं। किन्तु अधिकाधिक प्रयत्नशील होना चाहिए। निराशा विषयासक्ति का चिह्न हो सकता है, अश्रद्धा का तो है ही। रामनाम लेने में जो थक जायगा—निराश हो जायगा उसकी श्रद्धा अपूर्ण ही कहनी चाहिए न ? कोलंबस के साथ रहने वाले लोगों की श्रद्धा समाप्त हुई तभी वे उसे मारने के लिए तैयार हुए। कोलंबस को श्रद्धा की आँखों से किनारा साफ दिखाई दे रहा था और उसने थोड़ा समय माँगा और वह अमेरिका पहुँच गया !!! न खाने योग्य वस्तु स्वप्न में खाई तो उसका भी यही अर्थ है। ऐसे स्वप्नों के

बाह्य कारण होते हैं। उन्हें समझ कर दूर करना चाहिए। सभी अवस्थाओं का जो साक्षी वह निष्कल ब्रह्म मैं हूँ' * ऐसा हम गाते हैं। वैसा बनने का सतत प्रयत्न करते हों तभी उसका गाना योग्य है। वैसे हम नहीं हुए हैं, इसके द्योतक ये स्वप्न हैं। हमें वे दीपस्तम्भ की तरह हैं। ईश्वर की कृपा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। किन्तु प्रयत्न रूपी निमित्त के बिना वह हिलता भी नहीं। जीवमात्र की शुद्धतम सेवा ही साक्षात्कार है।

ता०—१६—१२—३४ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—७५]

रामनाम रामबाण है : किसानों की खण्डभूमि : विषमता का सम्पूर्ण नाश असम्भव : रूस से शिक्षा

चि०—, अब छः बजने आये हैं। किन्तु घना अँधेरा है। हाथ अकड़ गये हैं। यहाँ जंगल की तरह है। हरिजन आश्रम बसाना है। जानबूझकर दो कोठड़ियाँ बनाई हैं। बाकी तीन-चार तम्बू हैं।

रामनाम रामबाण है, ऐसा अटूट विश्वास तेरे पास है। तो इस सत्य का तुझे अनुभव आयेगा ही। सर्वत्र अँधेरा ही दिखाई देता हो, तो भी उसका जप करती जाना, कुशल ही होगा।

किसानों के ज़मीन के टुकड़े का प्रश्न बहुत कठिन है। अपने हाथों में शासन आया तो भी उसे सुलझाना कठिन ही है। क्या आज अपना प्रयोग, शासन बिना किया जा सकता है, यह देखने का है। ज़मीन के ये छोटे टुकड़े भी बुद्धि लगाकर बोये गये तो उनका उपयोग हो सकता है। यह सब प्रयोग करके ही दिखाने योग्य है। अपना खुद का ज्ञान भी संकुचित है। इससे हम पंगु की तरह हो गये हैं। इसीलिए खेती का प्रश्न प्रत्यक्षतः हम

---

*यत्स्वप्न जागर सुषुप्ति मवैति नित्यम्।
तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः॥
(प्रातःप्रार्थना, आश्रम-भजनावली)

हाथ में नहीं लेते। सहज सूझे ऐसे और सहज करते बने ऐसे उद्योग ही आज हमें करने हैं। कुछ भी कर किसानों का आलस्य निकाल सके और उद्योग के साथ बुद्धि का मिलन कर सके तो बाकी सब अपने आप ठीक हो जायगा।

आज की अपेक्षा पहले लोगों की स्थिति निश्चय ही अच्छी थी, यह बात सिद्ध की जा सकती है। पहले बाहर से भीतर धन खींचा जाता था। ज़मीन के इतने टुकड़े नहीं थे। आज की तरह धन कभी बाहर जाता नहीं था। प्रकृति अपना काम अपने रास्ते करती थी। आज पूर्ण ज्ञान न होते हुए भी प्रकृति के काम में हम हाथ डाल रहे हैं। और वह भी एकतंत्र की पद्धति से। उससे हम चूसे जा रहे हैं। रामराज्य अवश्य कल्पना है किन्तु उसके आधार पर ऐसा कुछ न कुछ पहले था ही, यह भी हम सिद्ध कर सकते हैं। और असत्य और दारिद्र्य का संपूर्ण लोप कभी नहीं था और आगे भी वह नहीं हो सकता।

पर्वत की गुफा में भाग जाने की प्रथा में उबकाहट ही भरी हुई है। उसका थोड़ा-सा उपयोग होगा भी। किन्तु आज निश्चय ही नहीं है। सेवा करते करते मर जाना गुहा में रहने की तरह ही है।

जो बात खुद को लागू है वही दूसरे पर भी। खुद के बारे में अनासक्त होते हुए भी शीतोष्ण का ज्ञान होगा ही। जाड़े में धूप, और गर्मी में ठंड हम खोजेंगे ही। किन्तु यह खोज सफल न हुई तो हम रोते नहीं बैठेंगे। यही अनासक्ति है। रही बात जाड़े से अकड़नेवाले औरों के बारे में। उन्हें मदद करने का हम प्रयत्न करेंगे। उन्हें अकड़ते हुए देखकर हमारे पास होगा वह या उसमें से कुछ हम देंगे। किन्तु इतना करने के बाद भी वे अकड़ते रहें तो वह हमें सहन करना चाहिए। उससे अधीर होकर मारपीट न करनी चाहिए। असत्य का आचरण न किया जाय यही अनासक्ति है। खादी पेट का व्यवसाय है भी और नहीं भी। उसे अन्नपूर्णा कहा गया है।

हिंसा को छोड़ दिया तो रूस से बहुत कुछ लेने लायक है, ऐसा मैं मानता हूँ। जो आज जबरन सम्भव हुआ दिखाई दे रहा है वह उतना

अपनी इच्छा से होगा भी नहीं, ऐसा सम्भव है। किन्तु हमारे सारे अनुमान पढ़ने पर ही होते हैं। यह ठीक नहीं। हमें अपना स्वतंत्र विचार करना ही उचित है।

विषमता का सर्वस्व नाश असम्भव है। किन्तु अधिक से अधिक समता तक पहुँचने का एक ही मार्ग मैंने दिखाया है। और मैंने दिखाया वह कुछ नया नहीं। पुराना ही (कदाचित् नई पद्धति से) मैं दिखा रहा हूँ।

फुर्सत के समय अतिरिक्त धंधा कर अपनी आय में वृद्धि की जा सकती है, यह किसानों को बहुत बड़ा आश्वासन है।

किसानों के आर्थिक हितों का संघटन होने लायक है। संघशक्ति हुए बिना आर्थिक लाभ असम्भव है, यह उन्हें समझा दिया जा सकता है।

कर्म का नियम जानना सरल है। मिकैनिक्स (यंत्र-विज्ञान) में जो हम सीखते हैं वही इसमें है। जो दृश्य शक्तियाँ एकत्र काम करती हैं उनका एक ही दृश्य परिणाम हमें दिखाई देता है। वही बात कर्म की है।

तुझे छोटे गाँवों में जाना हो तो जा सकती है। किन्तु जो है उसी में दृढ़ता से लगी रही तो बहुत है। एक जगह पूरी सफलता मिली तो वह एक गुणान का काम करेगी। अपने पास आज गुणान नहीं है।

ता०—३१—१२—३४ बापू के आशीर्वाद

बिरला मिल्स, देहली

[पत्र—७६]

कर्म की गति : फुंसियों का इलाज : ईश्वर से याचना : प्रार्थना वियोगी का विलाप है

चि०—, तेरे पत्र का उत्तर इस बार बहुत देर से दे रहा हूँ। क्योंकि समय ही नहीं है। आज लिख-लिखकर दाहिना हाथ थक गया है अतः बायें हाथ से लिख रहा हूँ।

मेरा शरीर दुबला तो हुआ ही होगा किन्तु मुझे वैसा नहीं मालूम होता। उपवास के कारण अशक्तता ज़रा भी नहीं बढ़ी। बढ़नी ही नहीं

चाहिए, यदि उपवास का पारण ठीक हो सका। मैं समझता हूँ कि मेरे आहार का परिणाम मेरे शरीर पर अच्छा ही हुआ, उसका विश्लेषण मैं नहीं कर सकता। माता-पिता इत्यादि तुमसे मिलकर गये, यह अच्छा हुआ।

फुंसियाँ होती हैं; उसका उपाय है ही। थोड़े दिन फल और कच्चा शाक खाकर रहना। वाष्पस्नान किया कि वे तुरन्त मुरझा जायँगी। वाष्पस्नान के बाद ठंडे पानी से स्नान करना चाहिए। तीन-चार दिन में अँतड़ियाँ साफ़ हो जा सकती हैं। पश्चात् दूध या केवल मीठा दही और फल, उसी तरह कच्ची शाक, खाना चाहिए। शाक में भी, मेथी, पालक, चावल की माँड़, सलाद ये अच्छी हैं। मैं तो सरसों के पत्ते और डंठल भी खाता हूँ।

ईश्वर से माँगना माने अपनी इच्छा तीव्र करना। ईश्वर अपने से भिन्ना-भिन्न है। भिन्न है क्योंकि वह संपूर्ण है। अभिन्न है क्योंकि हम उसके अंश हैं। समुद्र से अलग पड़ा हुआ बिन्दु समुद्र की प्रार्थना न करेगा तो किसकी करेगा? किन्तु समुद्र को कोई कर्त्तव्याकर्त्तव्य होता है? प्रार्थना वियोगी का विलाप है। उसके बिना देहधारी जीवित ही नहीं रह सकते।

राष्ट्र की प्रगति की चाभी अपने हाथ है और नहीं भी है। यदि हम शून्यवत् हों तो प्रगति होगी। शून्यवत् होना अपने हाथ है। किन्तु प्रगति अपने हाथ नहीं। क्योंकि हम शून्य हो गये फिर वह (प्रगति) एक ही, एकस्वरूप परमात्मा के हाथ है। 'ऊधो, कर्मन की गति न्यारी' यह शुद्ध सत्य है। कर्म का कुछ नियम है, इतना जान सकते हैं। किन्तु यह नियम कैसे काम करता है, यह हमें समझ में नहीं आता। यह भी प्रभु की कृपा ही है। साधारण राजाओं के नियम भी हम नहीं जानते तो फिर नियमों की मूर्ति जो परमात्मा है, उसके नियम हम कैसे जान सकेंगे।

इस युद्ध के प्रारम्भ में जो विजय दिखाई दे रही थी, वह कल्पना ही थी। पराजय भी काल्पनिक ही था। सत्य की हमेशा विजय ही है, ऐसी जिसकी सतत श्रद्धा है उसके शब्दकोश में 'हार' शब्द ही नहीं है।

ता०—३—२—३५ बापू के आशीर्वाद

वर्धा

[पत्र—७७]

अहिंसा और सेना : गायन और नृत्य : पूर्ण सत्याग्रही : मासिक धर्म : हिन्दू-मुस्लिम एकता

चि०—, आज तेरे दोनों पत्रों का उत्तर देने बैठा हूँ—ता० ६-२-३५ और ३०-३-३५ के। तेरा हल चलाने का और मोट का व्यवसाय आज-कल चल रहा है क्या ?

जिन लोगों में तेरी प्रतिष्ठा हो उन्हें तू जन्म-मरण के लिए होनेवाले खर्च से बचा। सभी मानेंगे, ऐसा नहीं। फिर भी कुछ को तो ठीक मालूम होगा।

० ० ० से हुआ तेरा संवाद अच्छा है। बहुत लोग अहिंसा का पालन पालिसी के कारण करते हैं यह सच है। किन्तु तेरे ऐसे कितने ऐसे भी हैं जो अहिंसा को धर्म मानकर उसका पालन करने का महाप्रयत्न करते हैं। अन्त में यही अहिंसा काम आनेवाली है। हम स्वतंत्र हुए तो भी सेना तो रहेगी ही। मेरी अहिंसा में अभी मुझे इतनी शक्ति दिखाई नहीं देती कि जिससे लोग सेना की आवश्यकता नहीं है, यह बात मान लेंगे। सेना होगी तो सैनिक शिक्षण भी होगा। यह हुआ अनुमान। यदि हमने सचमुच अहिंसा के मार्ग से स्वतंत्रता प्राप्त की तो सेना की आवश्यकता ही न पड़ेगी। ऐसा होना कुछ असम्भव नहीं। अहिंसा की शक्ति अमाप है। वैसी ही अहिंसक की है। अहिंसक खुद कुछ नहीं करता; उसका प्रेरक ईश्वर होता है। इस कारण भविष्य में ईश्वर उससे क्या करा लेगा, यह वह खुद कैसे बतायेगा। अतः यहाँ काम्प्रोमाइज् (समझौता) का सवाल ही नहीं है; शक्ति के माप का प्रश्न है। साँप से डरकर मैंने उसे मारा तो मैं कुछ काम्प्रोमाइज् नहीं करता—अपनी अशक्ति का प्रदर्शन करता हूँ। ईश्वर ने इससे अधिक शक्ति नहीं दी अथवा ऐसी शक्ति प्राप्त करने लायक शुद्धि मैंने नहीं की, तप नहीं किया, ऐसा ही कहना चाहिए। काम्प्रोमाइज् मनुष्य जान-बूझ कर करता है।

पूर्ण सत्याग्रही माने ईश्वर का पूर्ण अवतार। ऐसा पूर्ण अवतार संसार

को क्या हिला देगा, यह तेरे मन में शंका है। है न? यह संसार ऐसा अवतार निर्माण करने की प्रयोगशाला ही है, यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। हम सब अंश रूप से तैयारी करें तो ऐसा अवतार कभी न कभी प्रगट होगा ही। फिर तुझे सेना के सम्बन्ध में ऐसा प्रश्न पूछना न पड़ेगा।

सरकार यंत्र है। किन्तु उसे चलानेवाले तो यांत्रिक नहीं हैं न ?*

गायन अथवा नृत्य देखने में दोष नहीं, यदि वे अश्लील न हों। किन्तु अपने लिए कोई दूसरा पैसे दे और हम देखने जायँ, यह खटकने लायक जरूर है। एक को कोई पैसे दे देगा। बहुतों को कौन देगा? हम तो बहुत हैं। इस विषय में सबको अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार चलना चाहिए।

कुएँ की सफ़ाई का प्रश्न बहुत बड़ा है। कुएँ की सीढ़ियाँ यदि बन्द कर सकें तो बहुत बड़ा काम हो गया, ऐसा कहा जा सकता है।

तेल निकालने की क्रिया मुझे ठीक लिखकर भेजो, मैं उसे आज़माकर देखूँगा।

० ० ० परीक्षिका चुनी गई। उसके लिए प्राप्त होनेवाली फ़ीस का हिस्सा वह दे और प्रश्नपत्र मौलिक और सरल निकाले। (स्त्रियों के) के मासिक धर्म के बारे में मैंने जो लिखा वह ठीक है। + वैसी निर्विकारता आने में बहुत समय लगता है। यह विकार इतनी सूक्ष्म वस्तु है कि उसे हम हमेशा ही पहचान नहीं पाते।

जवाहरलाल को छुड़ाने का आन्दोलन युरोप करे, यह ठीक है।

(केंद्रीय) असेम्बली के मत का आदर नहीं किया जाता, इसके लिए मुझे निराशा नहीं मालूम होती। यह परिणाम मेरे ध्यान में था ही। किन्तु वह प्रवेश आवश्यक था और है।

---

* 'सरकार का हृदय परिवर्तन कैसे होगा? सरकार तो यंत्र है। यंत्र को हृदय कहाँ?' इस प्रश्न का उत्तर।

+ निर्विकार स्त्रियों का मासिक धर्म बंद हो जायगा, यह महात्मा जी का मत है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के विषय में मैंने मौन धारण किया है। क्योंकि मैं कुछ भी करने में असमर्थ हूँ। गजराज जब थक गया तब उसने मौन धारण किया और प्रार्थना शुरू की। उसकी प्रार्थना सफल हुई। गजेन्द्र की तरह ही मेरी स्थिति समझो।

मेरी प्रार्थना चल रही है। मोक्ष प्राप्त हो तब कहूँ। उसका काल-निर्णय समझ लेने की अनासक्त को जल्दी क्यों?

यहाँ नये आदमी बहुत आये हैं। स्वयं पाकगृह एक दम सादा हो गया है। भाप से सब पकाया जाता है। अर्थात् एक ही बड़े बर्तन में तीनों वक्त के बर्तन एक साथ चढ़ते हैं। इससे समय बहुत बच गया। रोटी बनाने की ही रसोई रह गई है, ऐसा कहा जा सकता है। रोटी का काम भी सरल बनाने की खोज में हूँ। तेल का कोल्हू चल रहा है। पास का गाँव रोज़ नियम से साफ होता है। मैं एक बार ही गया था। महादेव रोज जाता है।

ता०—५—४—३५ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—७८]

प्याज़ : लाठी-शिक्षण और अहिंसा : सफेद खादी बनाम रंगीन खादी

चि०—, आज मेरे मौन का अन्तिम दिन है। मौन के कारण पिछला बहुत सारा काम अच्छी तरह निपट गया।

× × × ×

भात, गुड़, प्याज़ आदि खाने की मैं किसी पर सख्ती थोड़े ही करता हूँ। लोग जो चीज़ इस्तेमाल करते हैं मैं उनके केवल गुण-दोष ही दिखाता हूँ। कच्चे शाक के साथ इमली मैं तो खाता हूँ। मैं पानी में उसे निचोड़ कर उसका सत्व निकालता हूँ। कच्चा शाक भी मुझे तो पीसकर ही खाना पड़ता है।

देहाती लोगों के भोजन में प्याज़ का बड़ा स्थान है। यही एक ऐसी भाजी है जो उनके लिए बहुमूल्य है। प्याज़ हो तो घी वगैरा की बहुतनी

आवश्यकता नहीं होती। अतः मैंने प्रयोग के लिए उसे लिया है। जो चाहें खाते हैं। प्याज़ के बारे में मेरे विचार इतने ही परिणाम में परिवर्तित हुए हैं कि जो उसे दवा के लिए खाते हैं उनके ब्रह्मचर्य में उससे अड़चन न होगी। किन्तु इसके लिए मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है।

लाठी आदि की शिक्षा से अहिंसा-वृत्ति ढीली पड़ने की सम्भावना तो अवश्य है। लाठी रक्षा के लिए सिखानी है न? किन्तु जो सिखाना चाहता है उसे उसका उपयोग न सिखाने का नियम बनाने की इच्छा नहीं होती।

सफेद खादी की जगह रंगीन इस्तेमाल ही नहीं करनी चाहिए ऐसा मैंने लिखा नहीं है। लिखा हो तो उसे गलत समझना।

स्वराज्य मिलने पर बहुत-सी बातों में इतना अन्तर पड़ेगा कि आज रियासतों के बारे में कुछ कहना कठिन है। किन्तु सामान्यतः रियासतों की शक्ति को स्वराज्य तंत्र रोक न सकेगा, ऐसा कहा जा सकता है।

लोहार, सोनार वगैरा को वैश्य समझना चाहिए। कल इन्दौर जा रहा हूँ। २५ को लौटूँगा।

ता० १८—४—३५ बापू के आशीर्वाद

वर्धा

[पत्र — ७९]

अरविन्द बाबू : अन्तःशुद्धि : ईश्वर का स्वरूप

चि०—,..... अरविंद बाबू के बारे में मैं कुछ भी कहने में असमर्थ हूँ। जिसके शरीर की चर्बी लटकने लगी है उसे शुद्ध ज्ञान न होगा और जिसका शरीर नाजुक है उसको वह होगा, यह कौन जानता है? मेरे लिए मेरा मार्ग अनुकूल है इतना ही कहा जा सकता है। हमें संसार का न्याया-धीश नहीं बनना चाहिए। इतना तो अवश्य कबूल करना पड़ेगा कि अरविन्द बाबू की छाया के नीचे रहनेवाले दो सौ आदमियों में ऐसे लोग हैं जिनके

जीवन में उनके सहवास के कारण बड़े परिवर्तन हुए हैं। प्रत्येक अपने-अपने स्वभाव के अनुसार अनुकरण करता है।

पश्चिम में निजी जीवन की पवित्रता की आवश्यकता नहीं मानते, ऐसा कहना पूर्णतः ठीक नहीं है। इस तरफ सब लोग वैसी आवश्यकता मानते ही हैं, ऐसा भी नहीं। हम उसकी आवश्यकता मानते हैं; इतना ही नहीं हम तो ऐसा भी मानते हैं कि अन्तःशुद्धि के बिना केवल बुद्धि से हुए कार्य चाहे जितने अच्छे मालूम होते हों तो भी वे कभी चिरस्थायी नहीं हो सकते। तात्कालिक परिणाम से उसकी तुलना नहीं करनी चाहिए। हाँ, जिस जगह नीति से सम्बन्ध नहीं है, ऐसे कार्यों के लिए अन्तःशुद्धि की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरण—कोई बढ़ई व्यभिचारी होगा, तो भी वह ठीक समकोण में टेबुल बना देगा। किन्तु अन्तःशुद्धि-रहित मनुष्य अस्पृश्यता नहीं निकाल सकता। वह चर्खे की ओर लोगों को आकर्षित नहीं कर सकता। क्योंकि दोनों बातों के लिए हृदय की आवश्यकता है। ऐसे कामों के बारे में समय की नाप-जोख करना उपयोगी नहीं। सत्य की निष्ठा से हुए काम का विशिष्ट परिणाम होना ही चाहिए। इसके बारे में सन्देह होना ही नहीं चाहिए। इतना विश्वास न होगा तो हम नीति का पालन कर ही न सकेंगे।

ईश्वर कल्पना के परे है अतः हम जिसका भजन करते हैं वह हमारी कल्पना का ईश्वर है। सच्चे ईश्वर को किसी ने नहीं देखा। देखा हो तो कोई वर्णन न कर सका। मुझे कौन-सा स्वरूप विशेष प्रिय है, यह कहना कठिन है। किन्तु जिस स्वरूप की मैं पूजा करता हूँ उसका नाम सत्य है। वह मूर्त्त है, अमूर्त्त है, अनेक रीति से प्रकट हुआ है। अपूर्ण को पूर्ण स्वरूप कैसे दिखाई देगा?

खादी आयगी तब उसका उपयोग करूँगा। यहाँ से ३१ को निकलकर २ को वर्धा पहुँचने का विचार है।

ता०—२८—५—३५ बापू के आशीर्वाद

बोरसद

[पत्र—८०]

पति की मृत्यु की याचना : ट्रस्टी धनिक : दूसरों को जानने का दावा

चि०—, तेरे सुन्दर पत्र का उत्तर तुरन्त देने लायक नहीं था। दाहिने हाथ को जब विश्रान्ति की आवश्यकता होती है तब काम पूरा ही नहीं होता।

..... भूकम्प का पाप से क्या सम्बन्ध है, यह मैं 'हरिजन' में लिख चुका हूँ। देखो। बिहार में किसी को भी क्रोध नहीं था। इतना ही नहीं सबको मालूम हो गया था कि यह पाप का फल है। ऐक्य के सिद्धान्त से यह सब पैदा होता है। साँप वगैरा के बारे में भी 'हरिजन' में लिखा है; वह पढ़ो। आज कल लिखा जानेवाला 'हरिजन' पढ़ती न हो तो उसे लेकर ध्यान से पढ़ती जाना। यह मेरी सिफ़ारिश है। तेरे पास तो आता ही होगा।

जो पति (ऐसी) बीमारी से पीड़ित है, जो सेवा से भी शान्त नहीं हो सकती, उसकी मृत्यु की इच्छा करने में मुझे पाप नहीं दिखाई देता। किन्तु पति को यदि शुद्धि की ज़रूरत हो तो उसे पूछना चाहिए। उसे पीड़ा होती होने पर भी यदि उसे जीवित रहने की इच्छा हो तो उसे जीवित रहने देना चाहिए।

मालिक का ट्रस्टी (विश्वास्त) बनना माने प्राप्ति का एक विशिष्ट भाग रखकर बाकी का सब गरीबों को माने स्टेट को (सरकार को) या इसी प्रकार की लोकोपयोगी संस्था को दे देना। सबों ने सब स्टेट को दे दिया तो किसी को साहस करने का अवसर ही न रहेगा। और मनुष्य-मात्र जड़ यंत्र बन जायगा।

धनिक लोगों के साथ मेरा सम्बन्ध रहेगा ही। मैं उन्हें दुष्ट नहीं मानता और ग़रीबों को देवदूत नहीं मानता। ऐसे बहुत से श्रीमान् लोग पूर्व-पश्चिम में हैं जो केवल परोपकारार्थ ही कमाते हैं। वे पूज्य हैं। ऐसे बहुत से गरीब मुझे मालूम हैं कि जिनका साथ त्याज्य है। मेरी कल्पना के स्वराज्य में शेर और बकरी एक तालाब में एक ही समय पानी पीते होने चाहिएँ। यह

कल्पना हो तो क्या हुआ। मुझे क्या चाहिए है यह भी यदि मैंने न समझा तो मैं प्रयत्न किसलिए करूँ ?

यह बात सच है कि मैं आदमियों को ठीक पहिचानता नहीं। किन्तु दूसरे जो 'हम पहचानते हैं' ऐसा कहते हैं, वे भी कहाँ पहिचानते हैं ? मेरे अज्ञान का मुझे खेद नहीं। आदमियों को मैं नहीं पहिचानता, इसलिए मैं उन पर विश्वास रखता हूँ।

तुझे किसी ने पूछा तो मेरे बारे में तुझे उत्तर देना ही पड़ेगा, ऐसा कहाँ है ? 'मैं उत्तर नहीं दे सकती। उनके कार्य और उनके विचार मुझे पसन्द आते हैं। जो पसन्द आता है उसके पसन्द आने के कारण हमेशा थोड़े ही दिये जा सकते हैं ? अतः जो पूछना हो वह उन्हीं से पूछिए।" ऐसा क्यों नहीं बताती ? ऐसा उत्तर दिया तो बहुत-सी झंझट से मुक्त हो जायगी। मुझसे कोई वस्तु ली और उसे पचा सकी हो तो अवश्य दूसरों को दे। जो हमने पचाया वह दूसरे का है ही नहीं, वह अपना हुआ। जो अपना हुआ उसके बारे में शंका न होनी चाहिए और उस विषय के उत्तर अपने पास होने ही चाहिएँ।

ता०—२१—६—३५ बापू के आशीर्वाद

वर्धा

[पत्र—८१]

रूस का उदाहरण : धनिक का ट्रस्टीशिप :

चि०—, पत्र पूरे करने के लिए आज ढाई घंटे का मौन धारण किया है। अभी एक के पीछे एक पत्र समाप्त करते-करते तेरा ६—७—३५ का पत्र हाथ में आया है।

हिटलर के बारे में दूसरी कौन-सी पुस्तक है ?

अब तेरा प्रश्न। रूस का उदाहरण नमूना कहकर आगे रखने में भय है। एक तो यह कि हमें प्रत्यक्ष अनुभव नहीं। दूसरा यह कि उसे बहुत

समय नहीं बीता। और तीसरा ऐसा कि वहाँ जो हो रहा है वह जबरन् कराया जाता है। अतः हम रूस को छोड़कर विचार करें। हमने इतनी बात अनिवार्य ठहराई है—हिंसा के द्वारा कुछ नहीं करना, कराना भी नहीं। अतः अमीरों से न्याय प्राप्त करने का सबसे सरल मार्ग यह है कि उनसे खुद प्राप्त किये धन का अच्छा से अच्छा उपयोग कराना चाहिए। इससे ऐसा फल उत्पन्न होगा कि वैसा करने से वे बहुत धनोपार्जन करने का मोह ही छोड़ देंगे। वैसा फल हुआ तो हर्ज नहीं और न हुआ तो भी ठीक ही है। उलटे इतना धन इकट्ठा करने की खटपट न करते हुए भी उसका उपयोग करने को मिलता है। बहुत से अमीर यदि ट्रस्टी हो गये तो हमें कुछ बताने की आवश्यकता ही नहीं। तेरे तर्क के पीछे यह सन्देह खड़ा है कि अमीर अपनी मिलकियत के ट्रस्टी कभी होंगे ही नहीं। यह सन्देह सच हो तो भी हर्ज नहीं। क्योंकि अन्त में सत्य की विजय निश्चित है। जो आवश्यकता से अधिक मिलकियत एकत्र करता है, वह चोरी करता है और चोरी का धन कच्चा पारा है। वह पच नहीं सकता। अन्त में वह चोर की मिलकियत न रहेगी। ऐसा विश्वास रखकर अपने अहिंसक उपाय हमें करते ही जाना चाहिए।

अभी समाधान न हुआ हो तो फिर पूछ। तेरा प्रश्न महत्व का है। और अहिंसा यदि तू पूरी तरह समझ गई हो तो मेरा उत्तर तुझे पूर्ण मालूम होना ही चाहिए।

ता०—१३—८—३५ बापू के आशीर्वाद

वर्धा

[पत्र—८२]

बन्दर से मनुष्य : आततायी की हत्या : अहिंसा से प्राप्त सत्ता : अहिंसक और हिंसक का सेवाक्षेत्र

चि० —, राखी समय पर मिली थी। जुलर के हाथ के बने कागज मिले। अच्छे थे। ......* खादी मिली। उसका उपयोग करूँगा। मेरा सूत बहुत-सा जमा हुआ है। उस पर बहुतों की नज़र पड़ने लगी है। किन्तु मेरी कताई क्या? १६० तार हो गये कि उस दिन दिवाली! देसी बोरके कई तरह के आते हैं, ऐसा आज तक मुझे मालूम हुआ है। जिस बोरके से मैं लिख रहा हूँ वह देशी माना जाता है। पता लगाऊँगा।

मेरी विचार-धारा की एक बात ध्यान में रख तो सब कुछ समझ में आ जायगा। मेरी तटस्थता का फल कब आयेगा; यह उसके काल के बारे में है, कार्य के बारे में कदापि नहीं। खुद परिणाम के बारे में भी नहीं। 'अमीर धन छोड़ें या न छोड़ें" इस कथन के पीछे फल के बारे में बेदरकारी नहीं; उसके बारे में निश्चिन्तता है। अपना रखा हुआ कदम ठीक होगा तो आज या कल उसका फल होगा ही।

बन्दर से मनुष्य उत्पन्न हुआ, यह बात मेरे गले नहीं उतरती। बल्कि मनुष्य की देह धारण करनेवाले जीव ने बन्दर वगैरा की देह धारण की होगी, इसमें सन्देह नहीं।

आततायी की हत्या करना मुझे पसन्द नहीं। आततायी किसे समझा जाय?

खूनी वगैरा लोगों को जेल में बन्द करना पड़ेगा, ऐसा कम से कम आज तो मुझे मालूम हो रहा है। किन्तु वह अहिंसा है, ऐसा मैंने कभी कहा हो, मुझे याद नहीं। मैं वैसा तो ज़रा भी नहीं मानता। मैंने ऐसा कहा है कि आज की परिस्थिति में वह अनिवार्य होगा। इसका अर्थ इतना ही कि

---

* स्थानीय स्त्रियों के द्वारा काते गये सूत की खादी महात्मा जी को भेंट में भेजी गई थी।

मेरी अहिंसा अभी बहुत अपूर्ण है। और इसीलिए खून वगैरा की तरह की हिंसा पर मुझे मार्ग नहीं मिला। पतन को पतन समझकर देखने में ही सत्य है।

अहिंसा के बिना प्राप्त की हुई सत्ता में दरिद्रनारायण का स्वराज्य होगा ही नहीं। स्वराज्य की प्राप्ति में जितने परिमाण में अहिंसा होगी उतने परिमाण में दरिद्रों का दारिद्र्य दूर हो जायगा। पूर्ण अहिंसा मुझमें नहीं, तुझमें नहीं और किसी में भी नहीं। किन्तु अहिंसा माननेवाले रोज़ अधिकाधिक अहिंसक होते जायँगे और उससे उनका सेवा-क्षेत्र बढ़ता जायगा। जो हिंसा के पुजारी होंगे उनका क्षेत्र संकुचित होता जायगा और वह अन्त में उन्हीं तक रह जायगा।

ता०—१०—६—३५ बापू के आशीर्वाद
वर्धा

[पत्र—८३]

रक्तपित्त के रोगी को ज़बर्दस्ती नपुंसक बनाना : विदेशों में प्रचार-कार्य

चि०—, आज तुझे पत्र लिखाना ही पड़ेगा। दायाँ हाथ केवल सोमवार को 'हरिजन' लिखने के लिए ही काम में लाता हूँ। और दिन बायें हाथ से लिखता हूँ। ऐसा करने में समय तो बहुत जाता है। उसमें तेरे पत्र का उत्तर तुरन्त देना चाहिए। * १६ तारीख के लगभग अवश्य आना। थोड़ा-थोड़ा कर तुझे चाहे जितना समय दूँगा। घूमने जाते समय दिया तो चल जायेगा या नहीं? यहाँ आते समय रहने के दिन तय न कर आई तो अच्छा। दो दिन अधिक गये तो जायँ। यहाँ फैले हुए काम धीरे-धीरे देखेगी तो अच्छा और अपनी बातें भी सुविधा के साथ हों तो अच्छा।

...तेरी प्रेरणा से हिटलर की पुस्तक पढ़ रहा हूँ। लेनिन की भी

* यह पत्र महात्मा जी ने दूसरे के हाथ से लिखवाया है।

Maxton की लिखी हुई पढ़ी। हिटलर के बारे में दूसरी पुस्तक मँगा रखी है।

...झोपड़ी का वर्णन आकर्षक है। तुमसे ईर्ष्या करने के कितने ही कारण हैं।

रक्तपित्त वगैरा की तरह रोग जिन्हें हुए हैं उन्हें जबरन नपुंसक बनाने की प्रथा स्वीकार करने में कई अड़चनें आती हैं। उससे कई तरह के अनर्थ हो सकते हैं। और किसी भी रोग को असाध्य मान लेना भी ठीक नहीं। संयम का प्रचार कर जितना फल प्राप्त कर सकते हैं उतने से सन्तुष्ट रहना यही मुझे सही सलामत मालूम होता है। कदम कदम पर मुझे कायरता की गंध आती है। कायर कातनेवाला सूत के उलझाव को चाकू से निकाल लेगा। और कुशल कारीगर लगन से और कुशलता से सुलझायगा; सूत अविच्छिन्न बनाये रखेगा। इसी प्रकार का कोई उपाय अहिंसक मनुष्य असाध्य समझे गये रोगो से पीड़ित लोगों के लिए सोचेगा।

विदेशों में अपना नियमित प्रचार-कार्य यह बैलगाड़ी की रेल से लगी होड़ मालूम होती है। हम प्रचार-कार्य में यदि हजार खर्च कर सकें तो विरोधियों को एक करोड़ खर्च करने की सामर्थ्य है। अतः मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम अपने आप सहज होनेवाले प्रचार-कार्य से सन्तोष करें।

ता०—२४—६—३५ बापू के आशीर्वाद

वर्धा

[पत्र—८४]

ब्रह्मचर्य

चि०—, हम आठ तारीख को नंदीदुर्ग जा रहे हैं।

तूने अच्छे अनुभव लिये यह कहना चाहिए। कांग्रेस के फार्म पर दस्तखत करनेवाले के बारे में अपने मन में सन्देह हुआ तो हम उन्हें कुछ मना नहीं कर सकते। अलग-अलग बहाने कर आदमी कांग्रेस में भरती हो ही जायँगे। अन्त में अच्छे आदमी अधिक होंगे तो ही कल्याण होगा।

'महाराष्ट्रीय' के पत्र की बात एक दम सच है; किन्तु उसकी कल्पना साफ़ झूठ है। लड़कियों के कंधे पर हाथ रखकर मैं अपनी विषय-वृत्ति बढ़ा रहा था, यह उस लेखक के पत्र का अर्थ किया जा सकेगा। उसका कथन तो निराला ही था। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि लड़कियों के कंधे पर हाथ रखना मैंने बन्द कर दिया, इससे मेरी विषय-वासना का कोई सम्बन्ध नहीं। उसकी उत्पत्ति तो केवल पड़े-पड़े निरर्थक खाने में थी। मुझे स्राव हुआ किन्तु मैं जागृत था और मन भी कब्जे में था। मुझे कारण मालूम हुआ और मैंने डाक्टरी विश्राम लेना बन्द कर दिया। और आज तो मेरी स्थिति पहले थी उससे यदि अधिक अच्छी स्थिति की कल्पना हो सकती है, तो वैसी है। इस बारे में तुझे अधिक पूछना हो तो पूछ सकती है, क्योंकि तुझसे मैंने बड़ी-बड़ी आशाएँ रखी हैं। अतः तुझे मेरी ओर से जो कुछ मेरे बारे में जानना हो जान ले। अभी जो लेख मैंने लिखे हैं, वे अच्छे विचार करने लायक हैं। यदि तूने यह समझा हो तो ब्रह्मचर्य का मार्ग सीधा हो जाता है। जननेन्द्रिय विषयों के उपभोग के लिए नहीं, यह बात यदि स्पष्ट हुई तो सारी दृष्टि ही बदल जाती है। जिस तरह किसी को रास्ते में क्षयरोगी के रक्त का वमन दिखाई दे और उसी के साथ वह उसे रत्न समझकर हाथ में लेने के लिए उत्सुक हो और फिर यह वमन है ऐसा समझते ही वह शान्त हो जाय, वही बात जननेन्द्रिय के उपयोग के बारे में है। वस्तुस्थिति यह है, कि यह मत इतना दृढ़ और स्पष्ट कभी नहीं था। और अब तो नई शिक्षा इस मत का विरोध करती है। नई शिक्षा सीमित विषय-सेवन को सद्गुण समझती है और उसकी आवश्यकता है, ऐसा सुझाती है। इन सब पर विचार करके देखो। बहिनों का जो अनुभव तूने भेजा है उसे अच्छा कहा जा सकता है।

ता० — ६—५— ३६ बापू के आशीर्वाद

[पत्र—८५]

मेरे ब्रह्मचर्य की अपूर्णता : वर्तमान विचार-धारा

चि० —, नन्दी दुर्ग में रोज़ की डाक रोज समाप्त की जाती है, ऐसा कहा जा सकता है। तेरा ता० १८ का पत्र कल शाम को पढ़ा। उसका उत्तर आज दे रहा हूँ।

तू ने प्रश्न ठीक पूछा है। इससे भी अधिक स्पष्टता से तू पूछ सकती है। मुझे हमेशा स्खलन होता आया है। दक्षिण अफ्रिका में तो उसमें साल-साल का अन्तर पड़ता होगा। मुझे ठीक याद नहीं। यहाँ महीने-महीने का अन्तर पड़ता है। स्खलन होने का उल्लेख मैंने अपने दो-चार लेखों में किया है। मेरा ब्रह्मचर्य यदि स्खलन-रहित होता तो मैं संसार के सामने कितनी ही अधिक बातें रख सकता। किन्तु जिसने १५ वें वर्ष से लेकर सीधे ३० वर्ष की अवस्था तक अपनी पत्नी से ही क्यों न हो, विषयोय भोग किया है, वह ब्रह्मचारी बना तो भी वीर्य का पूर्णतः अवरोध कर सकेगा, यह लगभग असम्भव मालूम होता है। जिसकी संग्राहक शक्ति प्रतिदिन क्षीण होती गई है वह एकाएक वह शक्ति प्राप्त न कर सकेगा। उसका मन और शरीर दोनों दुर्बल हुए रहते हैं। अतः मैं अपने आपको अत्यन्त अपूर्ण ब्रह्मचारी समझता हूँ किन्तु जिस तरह उजाड़ देश में एरंड वृक्ष,—वही मेरी स्थिति है। यह मेरी अपूर्णता संसार को मालूम है।

बम्बई में मुझे जिस अनुभव ने तंग किया, वह विचित्र और अत्यन्त दुःखदायी था। मुझे स्खलन होते थे किन्तु वे सब स्वप्नावस्था में। मैं उनसे संतप्त न हुआ। उन्हें मैं भूल भी जाता था। किन्तु बम्बई का अनुभव तो जागृत अवस्था में हुआ और उसमें स्त्री-सम्पर्क की एकाएक उत्पन्न हुई इच्छा थी। यह इच्छा पूर्ण करने की वृत्ति ज़रा भी नहीं थी। मूढ़ता ज़रा भी नहीं थी। शरीर पर पूरा कब्ज़ा था। किन्तु प्रयत्न करने पर भी इन्द्रिय में उत्तेजन था। यह अनुभव नया था और अशोभन था। उसका कारण मैंने बताया ही

है। वह कारण दूर होते ही 'इन्द्रिय-जागृति बन्द हो गई। अर्थात् जागृतावस्था में बन्द।

मुझमें अपूर्णता होने पर भी मुझे एक वस्तु सुसाध्य हुई है। वह यह कि मेरे पास हज़ारों स्त्रियाँ सुरक्षित रह सकी हैं। ऐसे अवसर मेरे जीवन में आये हैं कि उस समय अमुक स्त्रियों को विषय-वासना होने पर भी उन्हें अथवा मुझे कहो, ईश्वर ने बचाया है। यह ईश्वर की कृति है, ऐसा मैं शत प्रतिशत समझता हूँ। इससे मुझे इस बात का जरा भी अभिमान नहीं मालूम होता। यह मेरी स्थिति मरणान्त तक कायम रहे, यह ईश्वर के पास मेरी नित्य की प्रार्थना है। शुकदेव की स्थिति प्राप्त करने का मेरा प्रयत्न है। वह मैं प्राप्त नहीं कर सका हूँ। वह स्थिति प्राप्त हुई तो मैं वीर्यवान होकर भी नपुंसक हो जाऊँगा और स्खलन असम्भव होगा।

किन्तु ब्रह्मचर्य के बारे में आजकल मैंने जो विचार प्रदर्शित किये हैं उनमें कोई न्यूनता नहीं, अतिशयोक्ति नहीं। उस आदर्श तक प्रयत्नों से चाहे जो स्त्री पुरुष जा सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस आदर्श को मेरे जीवित रहते ही जग अथवा हज़ारों आदमी पहुँच जायँगे। उसे हज़ारों वर्ष लगने हों तो भले ही लगें। तो भी यह वस्तु सत्य है, साध्य है, सिद्ध होनी ही चाहिए। मनुष्य को अभी बहुत मार्ग चलना है। अभी उसकी वृत्ति पशु की है, केवल आकृति मनुष्य की है। चारों ओर हिंसा चल रही है, ऐसा मालूम होता है। असत्य से जग भरा हुआ है। तो भी सत्य-अहिंसा धर्म के बारे में जिस प्रकार सन्देह नहीं उसी प्रकार ब्रह्मचर्य के बारे में समझो।

जो प्रयत्न करते हैं तो भी जलते रहते हैं वे प्रयत्न नहीं करते। वे अपने मन में विकारों का पोषण करते रहने पर भी स्खलन होने देना नहीं चाहते; स्त्री-संग करना नहीं चाहते। ऐसों को दूसरा अध्याय (गीता का) लागू होता है। उन्हें मिथ्याचारी कहना चाहिए। आधुनिक विचार ब्रह्मचर्य को अधर्म समझता है; अतः कृत्रिम उपायों से सन्तति-निरोध कर विषय-सेवन के धर्म का पालन करना चाहता है। इसके विरुद्ध मेरी आत्मा विद्रोह करती है।

विषयासक्ति संसार में रहेगी ही किन्तु जगत् की प्रतिष्ठा ब्रह्मचर्य पर है और रहेगी।

ता०—२१—५—३६ बापू के आशीर्वाद
नंदीदुर्ग

[पत्र—८६]

भावना और श्रद्धा : प्रार्थना का लाभ : जंगली लोगों में धर्म-प्रचार

चि०—, आटा, चावल, तेल आदि के बारे में लगन से प्रचार करते रहना। ये चीजें महँगी होने पर भी सस्ती समझना। हम नया अर्थशास्त्र बना रहे हैं। प्रत्येक देश का अर्थशास्त्र स्वतंत्र होता है। अतः तू निराश मत हो।

किसी समाधिस्थ मनुष्य के जीवित रहने पर श्रद्धा न बैठी तो उसे मृत देह समझ कर अग्नि-संस्कार करने लगने के प्रयत्न में जितना तथ्य है उतना ही ईश्वर पर श्रद्धा बैठने तक नास्तिक होने में है। भावना और श्रद्धा में भेद हो तो भावना न होते हुए भी श्रद्धा जमाने के लिए प्रामाणिकता-पूर्वक प्रार्थना के लिए बैठने में लाभ है।

जंगली लोगों में हम रहते हों तो हमें अपने धर्म का प्रचार न कर नीति-धर्म का प्रचार करना चाहिए। जब उनका हृदय-द्वार खुले तब उन्हें जो पसन्द करना होगा वह वे करेंगे। हमें तो उन्हें सभी धर्मों का सामान्य ज्ञान दे देना चाहिए।

ता०—२४—६—३६ बापू के आशीर्वाद
सेगाँव, वर्धा

[पत्र—८७]

सत्य का सापेक्षिक ज्ञान : वर्ण-धर्म : नवीन युगधर्म

चि०—, तेरी राखी मुझे नहीं मिली। मिली होती तो मैंने वह अवश्य बाँधी होती। किन्तु तूने वह भेजी अतः तुझे उसका सुख अथवा पुण्य प्राप्त ही हो गया।

'सेगांव के अनुभव'* मे वृद्धि की जा सकती है किन्तु अभी नहीं। फुरसत भी नहीं और इच्छा भी नहीं। किसी को बताने लायक अनुभव है, ऐसा नहीं मालूम होता।

जो भाषा आदमी इस्तेमाल करते हैं उसका रूढ़ अर्थ तो होगा ही। किन्तु भाषा इस्तेमाल करनेवाले का खुद का अर्थ उसमें होगा। वह आगे पीछे के सन्दर्भ से निकाला जा सकता है। सत्य को संपूर्णतः किसी ने नहीं जाना, अतः जिस-जिस वस्तु को मनुष्य जैसे देखेगा वैसे ही यदि उसने बताया तो उसके बारे में वह सत्य है। फिर सच में वह चाहे असत्य ही हो। इसी तरह युग-युगान्तरों में एक ही वस्तु के बारे में विचार बदलते जायँगे और वे ही उस युग के लिए सत्य माने जा सकेंगे। यह अर्थ या विचार 'असतो मा सद्गमय' में समाया है।

जहाँ ऊँच-नीच की भावना ही उड़ जाती है, वहाँ शूद्र तीन वर्णों की सेवा करे तो उसमें मुझे दोष नहीं दिखाई देता। शूद्र बनानेवाला यदि कोई परिचर्या-धर्म हो तो उसे बदलने की क्या आवश्यकता? ब्राह्मण और भंगी के ज्ञानी होने में कोई हर्ज नहीं। मेरी कल्पना में वर्त्तमान वर्णों में ज्ञान का किसी को ठीका नहीं। अपनी स्त्रियों की प्रार्थना के श्लोकों पर विचार करो। उसमें चार वर्णों के सामान्य धर्म क्या हैं? ज्ञानदेव वगैरा के वचनों में उच्चनीच भावना का समर्थन करनेवाले वचन भले ही मिल जायँ। दो-चार वचनों से किसी का उचित न्याय नहीं किया जा सकता। रामदास के बारे में तू क्या बताना चाहती है यह मुझे मालूम है। यह उदाहरण अयोग्य है।

---

* 'हरिजन' में प्रकाशित एक लेख।

ऐसा सिद्ध हुआ तो भी मेरे तर्क में बाधा नहीं पहुँचती। तेरी प्रार्थना * मैं स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि उस प्रार्थना की योग्यता का तूने पूरा विचार ही नहीं किया है। बहती बाढ़ में बहती गई है। तू, मैं और सब अपने-अपने माँ-बाप की चौखट में ही रहते आये हैं। यह भूल कर नया कहवा लेने में जितना अर्थ अथवा अनर्थ है उतना ही पुरानी चौखट के त्याग में है। हम उस चौखट में रहकर अनेक परिवर्तन कर सकते हैं। इसी का नाम प्रगति अथवा उन्नति है। एक दम नया दिखाई देना माने उल्कापात या नया धर्म। हिन्दू-धर्म की भी कहीं तो चौखट होगी या नहीं? लड़के पानी में रोज नये अक्षर निकालते हैं और निकाले कि गायब हो जाते हैं। इसमें भी उनके लिए खिलवाड़ होता ही है। ऐसा खिलवाड़ तुझे करना है? किन्तु पुरानी चौखट में ६७ वर्ष तक बढ़े हुए मुझको तू पानी में लकीरें खींचने के लिए कैसे खींच सकती है? मैं किनारे पर खड़ा होकर तेरा और तेरे समान लोगों का खेल देख रहा हूँ.....।

...मेरा अज्ञान + तुझे अच्छा मिल गया। अभी अधिक खोज करेगी तो इससे भी गहरा अज्ञान मिलेगा। किन्तु जब मेरा पूरा अज्ञान तुझे मालूम होगा तब तू भाग तो नहीं जायेगी? इतना वचन देती हो तो मैं कह डालूँगा कि मैं कुछ भी नहीं समझता। क्योंकि मैंने उसका अध्ययन नहीं किया। साम्यवाद के बारे में मेरे समाधान के लायक मैंने पढ़ा है। स्वराज्य में किसकी आवश्यकता होगी यह स्वराज्य दिखाई देगा, तब कहूँगा। मेरा जो विरोध तुझे दिखाई देगा वह सत्यासत्य हिंसा-अहिंसा के अनुसार ही होगा।

ता०—१०—८—३६ बापू के आशीर्वाद

---

* नया युगधर्म बनाने के बारे में।

\+ समाजवाद के साहित्य के बारे में।

[पत्र--८८]

गाँवों की सेवा : गो-दुग्ध का आग्रह : गृहस्थाश्रम और स्वच्छन्दता : ब्रह्मचर्य : नारी-स्वातंत्र्य की अनुचित दिशा

चि०—, जान पड़ता है, तेरी अच्छी ही परीक्षा हो रही है। देहाती लोगों के जेब में पैसे छोड़ना यह बात सरल है और नहीं भी। वे यदि अपना बताया हुआ सुनेंगे तो बिना पूँजी के या थोड़ी पूँजी से समस्त देहात की आय दुगनी बढ़ाई जा सकती है। इसमें देहात का शोषण करनेवालों की आय नहीं गिनी। किन्तु हम कहें वह उन्होंने नहीं किया तो—माने हम कहें उतनी मेहनत ही उन्होंने नहीं की, सिखायें और वे उद्योग न सीखें तो आय बढ़ाना कठिन है, इतना ही नहीं असम्भव है। दूसरी एक बड़ी अड़चन यह है कि देहात में इने-गिने आदमी ही जाते हैं और वे भी बिना अनुभव के। उनके शरीर देहात में रहने लायक कसे हुए नहीं होते।

देहाती लोगों का स्वभाव उन्हें ज्ञात नहीं होता। उनकी आवश्यकताओं के बारे में पूरा अज्ञान होता है; उनका खुद का हाथ नहीं चलता और बुद्धि भी वे चला नहीं सकते। स्कूल-कालेजों में प्राप्त किया हुआ ज्ञान देहात में ज़रा भी उपयोगी नहीं। ऐसी अवस्था में धीरज रखने की आवश्यकता होती है। आत्म-विश्वास की ज़रूरत पड़ती है; इनके साथ शरीर स्वस्थ हो तो अन्त में देहात की आर्थिक स्थिति सरकारी मदद न लेते हुए भी बहुत कुछ अंशों में—पचास प्रतिशत कहिए—सुधारी जा सकती है। ५० प्रतिशत मैं कम से कम कहता हूँ। मेरी समझ में तो ६० प्रतिशत सुधारी जा सकती है। शरीर-सुधार, समाज-सुधार और नैतिक सुधार और ये तीन बातें प्रमुख हैं। इसमें सरकारी मदद की कोई आवश्यकता नहीं। आर्थिक सुधार के काम में ही यदि सरकार से थोड़ी सहायता मिली तो काम सरल होता है। किन्तु ऊपर की तीन चीज़ों के बिना सरकारी सहायता कुछ भी नहीं कर सकती। यदि तू खादी-विज्ञान में सचमुच पंडित हो गई और कोई

भी प्रलोभन हो तो भी तू देहात से न खिसकी तो तूने लिखा उस सबका तुझे प्रत्यक्ष अनुभव होगा।

गाय के दूध का आग्रह नहीं रखती, यह ठीक नहीं। यात्रा में जाओ तब तू गाय का घी और पेड़ा रख सकती है। पेड़ा बिना चीनी का, माने केवल खोये का। उसके साथ खाना चाहो तो गुड़ खाना चाहिए। पेड़ा सूखा खाने के बजाय उसका चूर्ण बनाकर गर्म पानी में मिला उसका दूध बनाया जा सकता है। उसमें केवल विटामिन (जीवन-सत्व) की कमी होती है। किन्तु थोड़े दिन विटामिन न मिला तो उससे कोई नुकसान नहीं होता।

. .. सभी ब्रह्मचारी नहीं रहेंगे, यह बात समझने लायक है। इन्द्रिय-निग्रह जो नहीं कर सकता वह विवाह कर ले। किन्तु विषयों का गुप्त सेवन करना मुझे असह्य मालूम होता है। मनुष्य का पतन विषयों के गुप्त सेवन में है। ऐसा करने से मर्यादा नहीं रहती। मुझे गृहस्थाश्रम से ज़रा भी द्वेष नहीं। वह आवश्यक स्थिति है; सुन्दर है। किन्तु आश्रम माने उसके गर्भ में धर्म आया। गृहस्थधर्म स्तुत्य है। स्वच्छन्दता निन्दनीय है। मेरा सब विरोध स्वच्छन्दता के बारे में है।

और ब्रह्मचर्य-पालन के विषय में सच्चा हिस्सा तो अन्त में स्त्री का ही होना चाहिए। ब्रह्मचर्य का महत्व और उसकी आवश्यकता सिद्ध करने का बोझ अकेले पुरुष पर नहीं ही होना चाहिए। आजतक अधिकांश में यह बोझ पुरुषों ने ही उठाया है। इससे उस बोझ को अधिकार का रूप मिल गया है। इससे ब्रह्मचर्य की निन्दा हुई है। इतना ही नहीं वह जो सरल होना चाहिए, उलटे कठिन हो गया। इतना कि बहुत लोगों को वह असम्भव मालूम होता है। इसमें भी मुझे बहुत-सा दोष पुरुषों का ही दिखाई देता है। उन्होंने चाहे जिस प्रकार स्त्रियों को नीचे ही रखा है। यह करने में खुशामद और पशुबल इन दोनों का खूब उपयोग किया गया है। जो हो, मनुष्य जाति का आधा शरीर निर्बल हो गया और रहा। उसका परिणाम यह हुआ कि पुरुष अपने अनेक कार्यों में निष्फल साबित हुआ है। और

वह उचित ही हुआ कहा जा सकता है। आज स्त्रियों में थोड़ी-सी जागृति हुई है। फिर भी इस जागृति का कम से कम आज विकृत रूप हो रहा है। पुरुष स्वतंत्रता के नाम पर उसे दूषित कर रहा है। उसका अहंकार बढ़ा रहा है। स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ स्वेच्छाचार समझ बैठी है। इसमें से जो स्त्री-पुरुष ऊपर निकल सकें वे निकलें। तुम निकलो।

ता०—५—२—३७ बापू के आशीर्वाद

सेगाँव

[पत्र—८६]

विचार की कला

चि०—, मुझसे तुम चारों ने समय माँगा होता तो अच्छा हुआ होता। तुम्हारे देहात की परिस्थिति बिना समझे मैं क्या बता सकता था ? यह तर्क मुझे स्वीकार है। तेरा यह कहना भी सच है कि देहात के अनुभवों के बारे में मेरा अभी आरम्भ ही है। अर्थात् हम सब समान हैं। फिर भी मेरे विचारों में कुछ मौलिकता है और इस सब का कारण अहिंसा है। अतः तुम चारों को कुछ जानने लायक मिल जाता।

तू विचार करने की कला प्राप्त करने लगी है, यह मुझे ठीक मालूम होता है। क्योंकि ० ० ० के तेरे भाषण में मुझे विचार-शून्यता दिखाई दी थी। ये विचार मुझे मस्तिष्क से निकलने वाले धुएँ की तरह मालूम हुए थे। वे हृदय के उद्गार नहीं थे। मुझे समय निकाल कर तुमसे उस बारे में बोलना था। और दो और दो चार होते हैं, उसी प्रकार उन विचारों की शून्यता सप्रमाण सिद्ध कर देनी थी। किन्तु मुझे समय ही नहीं मिला। मुझे तेरी विचार-शून्यता सिद्ध कर देने की जल्दी नहीं थी। अतः मैंने तुझे रोका नहीं। मुझे इतना विश्वास है कि तू अपनी यह कमी कभी तो अपने आप देखेगी। अभी तेरे पत्र में ही मुझे उसकी स्वीकृति मिली। उस

भाषण के विचारों में तुझे वह दोष कदाचित् दिखाई नहीं देगा। किन्तु यदि सचमुच विचार करना सीखेगी तो उस भाषण के विचारों में रही त्रुटियाँ दिखाई दिये बिना न रहेंगी।

अतः सिद्धान्तों पर मेरे विचार मँगाना तूने स्थगित किया, यह मुझे पसन्द आया और जब तक विचार करने की कला हाथ में नहीं आई तब तक तू भाषण देना बन्द रखेगी तो वह मुझे अधिक पसन्द आयगा। विचार करने की कला शीघ्र प्राप्त कर ले।

ता —१३—५—३७ बापू के तुम सबको आशीर्वाद

तीथल – बलसाड़

[पत्र—६०]

शुद्ध प्रेम और शरीर-स्पर्श : दूसरों पर दोषारोप

चि०—, तेरे पत्र का पूरा उत्तर शायद मैं न दे सकूँगा। प्रयत्न करूँगा। भाषण न देने का हुक्म तो मैंने तुझे नहीं दिया था। किन्तु यदि दिया हो तो उसे वापिस ले लेता हूँ। मुझे किसी पर हुक्म नहीं चलाना है। तेरे विचारों में परिवर्तन हुआ तो मुझे उससे क्या ? तू अपने स्वभाव का अनुसरण करेगी। सभी को वैसा ही करना है।

शुद्ध प्रेम में शरीर-स्पर्श करने की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु उसका अर्थ यह तो नहीं है कि स्पर्श मात्र अपवित्र होता है। मेरा मेरी माँ पर शुद्ध प्रेम था। जब उसके पाँव दर्द करते तब मैं उन्हें दबाता था। उसमें कोई अपवित्रता नहीं थी। विकारी स्पर्श दूषित है। अतः मैं ऐसा कहूँगा कि शरीर-स्पर्श के बिना शुद्ध प्रेम अशक्य है, ऐसा कहने वाले ने शुद्ध प्रेम समझा ही नहीं।

० ० के बारे में तूने जो मान लिया है, वह ठीक नहीं है। तुझे जो प्रमाण मिला है उसका कोई मूल्य नहीं। ऐसी बातें सच मानने के पहले उस

व्यक्ति से पूछना चाहिए। मैं ऐसा नहीं कहता कि असत्य का आचरण न हुआ होगा किन्तु जाँच होनी चाहिए। मुझे यदि किसी ने बताया कि तूने ऐसा-ऐसा किया तो तुझसे पूछे बिना मुझे उसे मान लेना चाहिए क्या?

तेरे उस भाषण में तेरे हृदय के उद्‌गार होंगे; हां। किन्तु तू अब जो लिख रही है उससे तेरा भाषण अलग था, इतना तो तू कबूल कर लेगी न? वह कैसा भी हो। मैंने तुझे सूचित कर दिया है कि मेरा अनुभव तेरे अनुमान से अलग था। मेरे अनुभव से तेरे अनुमान का मूल्य तू अधिक रख सकती है किन्तु मैं क्या करूँ।

ता०—२९—५—३७ बापू के आशीर्वाद

तीथल—बलसाड

हमारे प्रकाशन

पुस्तकें आपका जीवन बना सकती हैं। पर वे आपका जीवन नष्ट भी कर सकती हैं। इसलिए उनके चुनाव में सावधानी से काम लीजिए।

१.	गांधीवाद की रूप-रेखा	१॥)
२.	योग के चमत्कार	१॥)
३.	घर की रानी	१)
४.	आनंद-निकेतन	२॥)
५.	भक्ति-तरंगिणी	१)
६.	अहंवादी की आत्मकथा	१)
७.	चारुमित्रा	२।)
८.	शृंखला की कड़ियाँ	२)
९.	हमारे नेता	१॥।)
१०.	वेदी के फूल	॥।)
११.	स्त्रियों की समस्याएँ	१)
१२.	गांधी-वाणी	१॥।)
	,, सजिल्द	२॥)
१३.	नई कला	२)
१४.	कन्या	१)
१५.	भाई के पत्र	२)
१६.	निबन्धकला	३)
१७.	नवजीवन	२॥)
१८.	अमृतवाणी	१॥)
१९.	भारतीय राष्ट्रीयता का विकास	।)

न केवल आलमारियों की शोभा हैं बल्कि जीवन को शक्ति और प्रकाश देनेवाले हैं।

साधना-सदन

लूकरगंज, इलाहाबाद

हमारा गांधी-साहित्य

१ गांधीवाणी

संग्रहकर्त्ता और सम्पादक—श्रीरामनाथ 'सुमन'

'गांधीवाणी', गांधीजी के व्यापक विचार-सागर से मथकर निकाला गया मणि-कोष है। इसमें युग-पुरुष के सब प्रकार के विचार एक ही जगह, सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध, मिल जाते हैं। सङ्कलन ऐसा है कि काल-क्रमानुसार इन विचारों की विकास-रेखा पर भी प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक भारतीय के हाथ में होनी चाहिए और हर विचार के लोगों को इसका अध्ययन करना चाहिए। इसमें सब विषय आ गये हैं। २० पुस्तकों की एक पुस्तक। सुन्दर छपाई; ढाई सौ से अधिक पृष्ठ। मूल्य : पौने दो रुपये।

२ स्त्रियों की समस्याएँ

स्त्रियों की विविध समस्याओं पर गांधीजी के विचार। विषय के वर्गीकरण और टिप्पणियों-सहित। प्रामाणिक द्वितीय संस्करण। सुन्दर छपाई; दोरङ्गा कवर। मूल्य : सवा रुपये।

३ अमृतवाणी

गांधीजी के ९० निजी पत्र, जिनमें जीवन की साधना और संशोधन का मार्ग—दर्शन है। गांधीजी को समझने तथा जीवन की अनेक शंकाओं के निवारणार्थ इसे पढ़िए। बढ़िया छपाई और दोरङ्गा कवर। मूल्य : डेढ़ रुपये।

स्त्रियों के लिए

१ घर की रानी

[श्रीरामनाथ 'सुमन']

हाहाकारभरी गृहस्थियों को स्वर्ग बनाने वाली, कुमारियों के भावी और विवाहिता स्त्रियों के वर्तमान जीवन को सफल और सुखी बनाने के व्यावहारिक उपाय बताने वाली अत्यन्त मनोरञ्जक पुस्तक। प्रत्येक कन्या और स्त्री के हाथ में देने योग्य। महिला-विद्यापीठ, बम्बई विद्यापीठ तथा हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में स्वीकृत। दूसरा संस्करण समाप्त हो रहा है। मूल्य : सवा रुपया।

२ भाई के पत्र

[श्री रामनाथ 'सुमन']

सुमनजी की सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय पुस्तक। कन्याओं और स्त्रियों के लिए आदर्श पथ-प्रदर्शक। इसके छः संस्करण हो चुके हैं और भारत की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। लगभग ३०० पृष्ठ; सुन्दर दोरङ्गा कवर। मूल्य : दो रुपये।

३ कन्या

[श्रीरामनाथ 'सुमन']

कन्याओं के लिए उपयोगी शिक्षाओं, सूचनाओं और हितकर बातों से भरी हुई। प्रत्येक कन्या को उपहार देने योग्य। ८ महीने में दूसरा संस्करण हो गया। मूल्य : सवा रुपये।

४ स्त्रियों की समस्याएँ

[म० गांधी]

स्त्रियों की समस्याओं पर विशद विचार। मूल्य : सवा रुपये

४ शृंखला की कड़ियाँ

[श्रीमती महादेवी वर्मा]

समाज-परिष्कारक और चिन्तक महादेवी की वाणी। इसमें पहली बार एक जाग्रत नारी ने नारी-समस्याओं पर व्यापक दृष्टि से विचार किया है। भावना, अनुभूति और चिन्तनशीलता का सामञ्जस्य आपको इसमें मिलेगा। महिला विद्यापीठ की विदुषी परीक्षा में स्वीकृत। दूसरा संस्करण। मूल्य : दो रुपये।

जीवन-निर्माणकारी साहित्य

१ आनन्द-निकेतन

[श्री रामनाथ 'सुमन']

पत्रों में इसे 'गृहस्थ जीवन की गीता' कहा गया है। जीवन का पथ-दर्शन करने वाली। प्रत्येक युवक, कुमारी और स्त्री के लिए माता सी हितकारी। उपन्यास-सी मनोरञ्जक पर अमृत-सी कल्याणकारी। जीवन को बल और प्रकाश देने वाली। दो वर्ष में तीन संस्करण। मूल्य : ढाई रुपये।

२ वेदी के फूल

[श्री रामनाथ 'सुमन']

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के लिए स्वीकृत। वीरता, त्याग और बलिदान की कथाएँ—जीवनप्रद और काव्यमयी भाषा में। एक-एक शब्द फड़कता हुआ। दूसरा संस्करण। मूल्य : बारह आने।

३ हमारे नेता

[श्री रामनाथ 'सुमन']

राष्ट्र-नेताओं के जीवन के मार्मिक अध्ययन एवं शब्द-चित्र। दक्षिण की 'राष्ट्रभाषा विशारद' परीक्षा के लिए स्वीकृत। दूसरा संस्करण। मूल्य : पौने दो रुपये।